प्रवास का प्रथम प्रहर

(महाकवि कालिदास का महाप्रयाण विषयक नाटक)

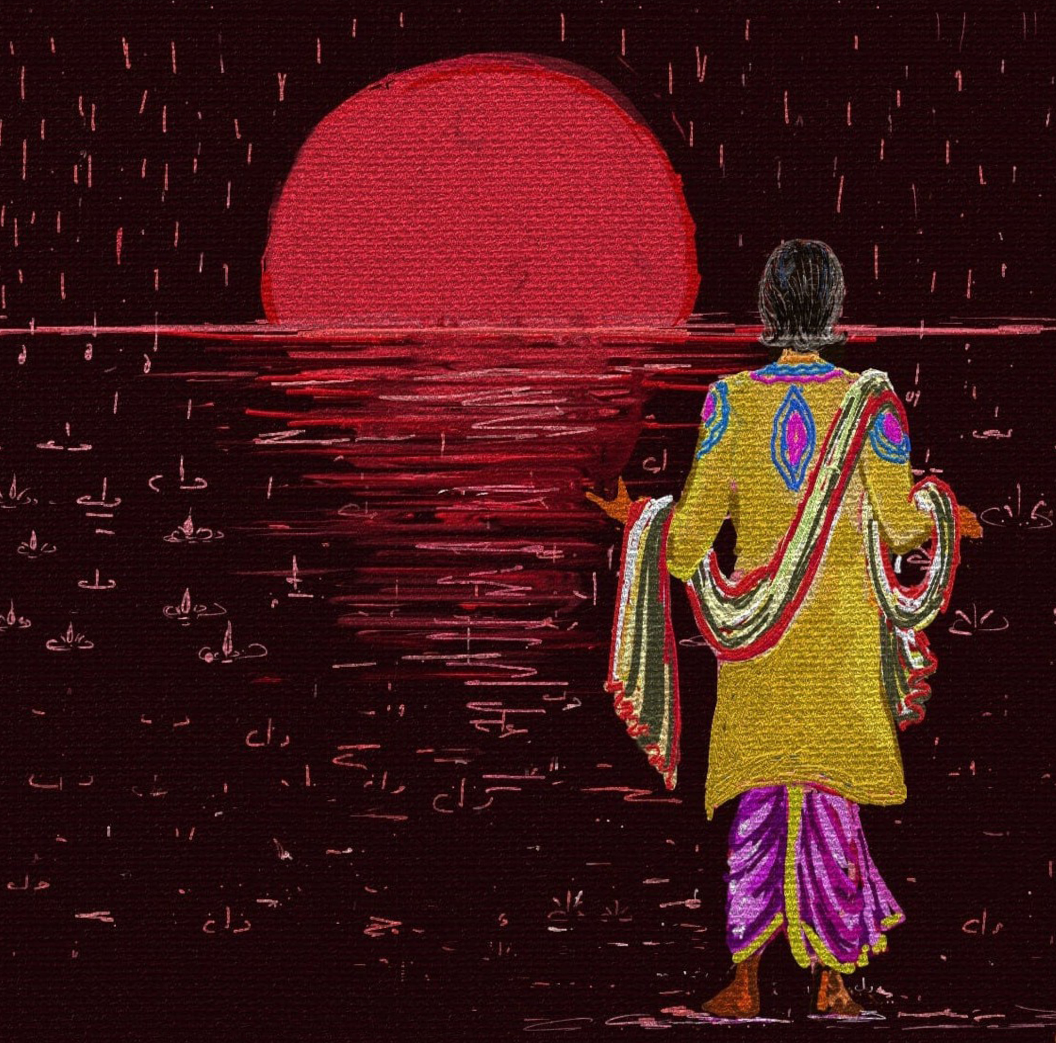

डॉ. रंगनाथ दिवाकर

इस नाटक का रंगमंचीय प्रदर्शन से पूर्व लेखक की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। फिर भी, इसकी प्रस्तुति से पूर्व यदि मुझे सूचित करते हैं तो मेरे लिए यह प्रसन्नता की बात होगी।

— लेखक

प्रवास का प्रथम प्रहर

(महाकवि कालिदास का महाप्रयाण विषयक नाटक)

डॉ. रंगनाथ दिवाकर

अनुप्रास प्रकाशन

जय-राम शोध संस्थान, सुलतानपुर के तत्त्वावधान में मनोलिता प्रकाशन, दरभंगा/पटना प्रस्तुत करता है...

अनुप्रास पेपरबैक्स
ISBN : 978-93-91371-50-0

प्रवास का प्रथम प्रहर
(महाकवि कालिदास का महाप्रयाण विषयक नाटक)
© डॉ. रंगनाथ दिवाकर
प्रथम संस्करण : 2025
मूल्य : ₹ 200

प्रकाशक : अनुप्रास प्रकाशन
'**धनेश्वरीधाम**', इन्द्र परिसर, लहेरियागंज,
मधुबनी, मिथिला (बिहार) 847 211
वेबसाइट : www.anuprasprakashan.com
ईमेल : info@anuprasprakashan.com
anuprasprakashan@gmail.com
मोबाइल : +91 8862977228

पुस्तक प्राप्ति स्थल :
- 102,अनंत विकास अपार्टमेंट,
वेदनगर, रुकनपुरा, पटना-800014
मोबाइल : +91 8709610336

- श्री मनोज कुमार चौधरी
न्यू बलभद्रपुर, लहेरियासराय,
दरभंगा (मिथिला), बिहार- 846001
मोबाइल : +91 9155221944

आवरण पेंटिंग : श्री मिथिलेश कुमार
भा. प्र. से.(से.नि.)

थॉमसन प्रेस इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली द्वारा मुद्रित

PRAVAS KA PRATHAM PRAHAR
A Critical and Dramatic Assessment of Mahakavi Kalidas's Maithilatva and His Mahaprayan by
Dr. Rangnath Divakar
Published by ANUPRAS PRAKASHAN
First Edition : 2025
Price : ₹ 200

विश्व वाङ्‌मय के शीर्षस्थ महाकवि कालिदास की रचनाधर्मिता को सादर...

— लेखक

विषयानुक्रम

मनोद्‌गार : 09-10

प्रवास का प्रथम प्रहर (नाटक) : 13-61

महाकवि कालिदास का मैथिलत्व और उनका महाप्रयाण : 63-87

मनोद्गार

महाकवि कालिदास रूपी पुष्प के साथ मुझ जैसा अकिंचन भी चींटी रूप में माता सरस्वती के श्रीचरणों तक पहुँच सके, इसी अभिलाषा के साथ मैं एक बार फिर महाकवि कालिदास के साथ उपस्थित हुआ हूँ।

24 अप्रैल 2022 को मेरी पुस्तक 'महाकविक महाप्रयाण' का लोकार्पण गुरुवर डॉ. प्रभाकर पाठक, पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा; साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित सुप्रसिद्ध कवि श्री उदयचन्द्र झा 'विनोद' एवं अन्य ने किया था। मैथिली में प्रकाशित यह पुस्तक महाकवि कालिदास के जन्मना मैथिल होने का उद्घोष करती है। इसमें संकलित निबंधों का मूलस्वर महाकवि कालिदास का मैथिलत्व है ही, इस ग्रंथ में संकलित 52 पृष्ठों के एक नाटक का मूल स्वर भी कालिदास का मैथिलत्व और उनका महाप्रयाण ही है। मैथिली साहित्य जगत् में इस पुस्तक को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। यह इस पुस्तक की लोकप्रियता का ही एक उदाहरण है कि 18 लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के समीक्षात्मक आलेखों से सुसज्जित 'अभिज्ञान महाप्रयाण' साहित्य अकादेमी युवा पुरस्कार से सम्मानित श्री दीप नारायणजी के संपादन में प्रकाशित हुआ। इसमें गुरुवर डॉ. प्रभाकर पाठक का भी एक समीक्षात्मक आलेख संकलित है। इसमें गुरुदेव ने शोध और नाटक को अलग-अलग करने और हिंदी-अंग्रेजी में इसके प्रकाशन का सुझाव दिया। उनके सुझाव को आदेश मानकर ही हिंदी में प्रस्तुत है यह नाटक— प्रवास का प्रथम प्रहर!

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि यह नाटक मेरे मैथिली नाटक 'महाकविक महाप्रयाण' का हिंदी अनुवाद नहीं है। कथ्य, संरचना और शिल्प की दृष्टि से दोनों दो स्वतंत्र नाटक हैं। यह तथ्यात्मक है कि दोनों का मूल स्वर– महाकवि कालिदास का मैथिलत्व और उनका महाप्रयाण समान ही है। महाकवि कालिदास का मैथिलत्व और उनके महाप्रयाण से संबंधित एक आलेख भी इस पुस्तक में संकलित है।

मुझे इस बात की खुशी है कि इसका प्रकाशन अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष भी जय-राम शोध संस्थान, सुलतानपुर द्वारा आयोजित पू. पिता जगन्नाथ चौधरी के 11वें पुण्य-पर्व समारोह में हो रहा है। इस वर्ष पुरालिपि मर्मज्ञ और पांडुलिपि विशेषज्ञ सुधी शोध विद्वान् पं. भवनाथ झा को सद्गृहस्थ संत जगन्नाथ चौधरी शोध सम्मान, 2025 और सुप्रसिद्ध गीतकार-कवि श्री चन्द्रमणि को वासुदेव-गोविन्द काव्य शिरोमणि सम्मान से अलंकृत किया जा रहा है। दोनों महानुभावों को बधाई! इस नाटक का रंगमंचीय प्रदर्शन अनेक अवसरों पर विभिन्न समारोहों एवं राज्य स्तरीय आयोजनों में हुआ है। इसका प्रथम प्रदर्शन राजकीय उच्चैठ-कालिदास महोत्सव, 2019 में बिहार इप्टा के राज्य सचिव एवं भारत इप्टा के राष्ट्रीय संयुक्त सचिव श्री इंद्रभूषण रमण 'बमबम' के निर्देशन में हुआ था। श्री बमबमजी ने इस नाटक की मंचनीयता और संवादों की प्रेषणीयता की दृष्टि से अनेक सुझाव दिए हैं जिनका समावेशन इस पुस्तक में किया गया है। इसके लिए मैं श्री बमबमजी का हृदय से आभारी हूँ।

मैं श्री मिथिलेश कुमार, भा.प्र.से. (से. नि.) के लिए अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने अत्यल्प समय में इस पुस्तक के मुखपृष्ठ का चित्र तैयार किया। पूर्व की पुस्तक 'महाकविक महाप्रयाण' के मुखपृष्ठ की पेंटिंग भी उन्होंने ही तैयार की थी। इस चित्र की जलांकित प्रति आवरण के अंत में साभार दी जा रही है।

मुद्रण में उत्पन्न हुई तकनीकी समस्या के बाद भी ससमय इसका प्रकाशन संभव करने वाले श्री दीप नारायणजी को साधुवाद!

मैं उन सभी महानुभावों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनकी लिखित वा मौखिक, प्रकाशित वा अप्रकाशित तथा अन्तर्जालीय वा श्रव्य सामग्रियों का उपयोग मैंने किया।

अशुद्धियों के लिए क्षमायाचना करता हूँ।

एक बार फिर महाकवि कालिदास की वंदना करता हूँ!

विदुषां वशंवद

रंगनाथ दिवाकर

(रंगनाथ दिवाकर)

'जय-राम', सुलतानपुर

सद्गृहस्थ संत जगन्नाथ चौधरी महाप्रयाण दिवस

24 अप्रैल 2025

पात्र परिचय

पुरुष पात्र

1. **वररूचि** : उम्र लगभग 38-40 वर्ष,
2. **पंडित** : विद्योत्तमा से विवाहोत्सुक युवक, उम्र 20-22 वर्ष
3. **अनुचर** : पंडित का सेवक, उम्र 30-32 वर्ष
4. **कालिदास** : सुप्रसिद्ध कवि, उम्र दृश्य के अनुसार
5. **राजा** : विद्योत्तमा के पिता, उम्र 45 वर्ष
6. **कुमारदास** : सिंहलराज कुमार धातुसेना, उम्र दृश्य के अनुसार
7. **चारण** : सिंहलराज का सेवक, उम्र 50 वर्ष के करीब
8. **महामंत्री** : सिंहलराज का मंत्री, उम्र 45 वर्ष
9. **कित्तीसेना** : कुमारदास का पुत्र, सिंहल का युवराज, उम्र 20-22 वर्ष
10. **सभासद 1**
11. **सभासद 2**

स्त्री पात्र

1. **विद्योत्तमा** : सुप्रसिद्ध विदुषी राजकुमारी, उम्र दृश्य के अनुसार
2. **प्रियंवदा** : विद्योत्तमा की परिचारिका, उम्र दृश्य के अनुसार
3. **रानी** : विद्योत्तमा की माता, उम्र लगभग 40 वर्ष
4. **कामसेना** : सिंहल देश की राजनर्तकी, उम्र 20-22 वर्ष,

(परिधान बदल राजा के सभासद सिंहलराज के भी सभासद बनकर बैठ सकते हैं।)

प्रवास का प्रथम प्रहर

दृश्य- एक

(मंच के एक तिहाई भाग में सामने और दायीं तरफ परदा लगा हुआ है। दो तिहाई भाग ही मुख्य मंच है। यहीं ऊपर से टँगारी द्वारा लकड़ी काटने की आवाज आ रही है— ठक! ठक!! मुख्यमंच का परदा उठता है। पंडित वररूचि एक युवा पंडित और अपने अनुचर के साथ उद्विग्न होकर वनक्षेत्र से गुजर रहे हैं।)

अनुचर : **(ठहरकर)** औ बाबू-भैया सब! देखिए देखिए! अरे देखिए यह अजगुत दृश्य! ले बलैया! इस बज्रमूर्ख को देखिए! जिस डाली पर बैठा है उसी को काट रहा है! मूर्ख कहीं का! **(हँसता है)**

वररूचि : **(चौंकते हुए)** क्या? जिस डाली पर बैठा है उसी को काट रहा है! क्या यह संभव है? असंभव!!

अनुचर : अपनी आँखों को चियारकर देखिए। नहीं तो खोलसा लगाकर देखिए! पर देखिए जरूर। ऐसा अजगुत दृश्य फिर नहीं मिलनेवाला है। **(इशारा करता है)**

वररूचि : **(आश्चर्यचकित)** सचमुच यदि ऐसा है तो यह एक अद्‌भुत दृश्य होगा!। कहाँ है दिखाओ तो! **(अपने आप से बड़बड़ाते हुए)** अरे! ऐसा आदमी तो हमारा साध्य बन सकता है!

अनुचर : ले बलैया! सामने तो है। पर साध्य? आचार्य! यह कैसा साध्य!

वररूचि : तुम नहीं समझोगे! मैं तो ऐसे ही मूर्ख की तलाश में निकला हूँ। आज अपने हर अपमान का बदला चुका दूँगा। शास्त्रार्थ में पराजय का ऐसा प्रतिशोध लूँगा कि विद्योत्तमा जीवन भर घुटती रहेगी, मर-मरकर जीवित रहेगी। मैं तो उसे छट्ठी का दूध याद कराकर रहूँगा!

अनुचर : हुँह! आपको तो अपनी छट्ठी का दूध याद है न?

वररूचि : **(गुस्साए हुए)** : चुप रहो!

अनुचर : चुप ही हूँ। हाँ! याद आया। विद्योत्तमा ने तो कुछ काल पूर्व आपको छट्ठी का दूध याद करा ही दिया था।

पंडित : अधम अनुचर! जले पर नमक मत छिड़को। **(वररूचि से)** अब क्या आज्ञा है गुरुवर?

वररूचि : आज्ञा नहीं वत्स! अब मेरा चमत्कार देखो।

पंडित : चमत्कार कैसा ?

वररूचि : शास्त्रार्थ में विद्योत्तमा ने हमें पराजित कर दिया। अब हम उसे बतायेंगे कि पाण्डित्य के साथ जब छल मिल जाता है तब क्या क्या होता है! पराजय का प्रतिशोध कितना भयंकर हो सकता है हम अब उसे यह पाठ पढ़ायेंगे!

पंडित : हाँ आचार्यप्रवर! मेरी तो जिह्वा ही बाँध दी थी उसने। जैसे मुँह में लकवा मार गया हो!

वररूचि : सब सूद सहित वसूल लेंगे। अरे! देखो तो वह अज्ञानी लकड़ी काटने वाला कहाँ है?

अनुचर : ले बलैया। गए थे शास्त्रार्थ में हराकर बियाह करने। क्या हुआ? भकचोन्ही लगा न? उस समय तो बकार नहीं फूटता था, अब छल से हराने चले हैं! दम ने दुस्सा मुँह पर मारे घुस्सा! ले बलैया!

वररूचि : तुम चुप रहो।

अनुचर : नहीं चुप रहूँगा! चुप रहने पर पाप चढ़ेगा। कहबी है अपन हारल आ बहुकैं मारल लोक कहीं भी नहीं बोलता है। ले बलैया! चाइनपर केश नै आ माथपर ककबा! अरे वो तो भगवती का अवतार है और आप शुम्भ निशुम्भ हैं! आप दोनों का कोई मेल नहीं!

वररूचि : चुप रहो! नहीं तो शिकायत कर प्राणदंड दिलाऊँगा तुम्हें।

अनुचर : **(डरते हुए)** ले बलैया! जिसकी ऊक नहीं उसकी फूक भारी! (सहसा सबकी नजर ऊपर लकड़ी काटने बैठे कालिदास पर पड़ती है।

वररूचि : **(ऊपर देखते हुए)** यह क्या कर रहे हो? गिर पड़ोगे! जान भी जा सकती है।

कलुआ : अरे! आन्हर हो? आँख चोन्हराएल है? देखते नहीं लकड़ी काट रहे हैं? लकड़ी लेकर जायेंगे तभी तो माँ भोजन बनावेगी। जाओ अपना काम करो। मुझे भी अपना काम करने दो।

वररूचि : **(युवा पंडित से)** जिसकी खोज में हम चले थे वह मिल ही गया। अब हमारा लक्ष्यभेद आसान हो गया।

पंडित : क्या आचार्यप्रवर?

वररूचि : **(युवा पंडित के कंधे पर हाथ रखकर आँख से इशारा करते हैं। इसके बाद लकड़ी काटनेवाले से मुखातिब होकर)** नीचे उतरो! हम तुम्हारा विवाह कराने आए हैं।

कलुआ : **(साश्चर्य)** मेरा बियाह!!

वररूचि : हाँ! और वह भी एक राजकुमारी से!
(आश्चर्य और खुशी के मारे कलुआ वृक्ष की डाल और टँगारी सहित नीचे गिरता है।)

कलुआ : **(शर्माते हुए)** उल्लू नै न बना रहे हैं? ठीके कह रहे हैं न! करा दीजिए न शादी! **(मस्ती में)** बड़ा मन होता है!

पंडित : एकदम सत्य! बस तुम्हें गुरुदेव की एक बात माननी है।

कलुआ : पहले शादी तो करायें। एक नहीं हजार बात मानूँगा। चरण पखारकर चरणामृत लूँगा। जीवन भर नौकर बनकर रहूँगा। **(उतावला होकर)** कहिए क्या करना है?

वररूचि : बस एक चीज करनी है।

कलुआ : **(शीघ्रता से)** क्या? मैं बियाह के लिए कुछ भी कर सकता हूँ।

वररूचि : तुम्हें मात्र चुप रहना है, मुँह से कुछ नहीं बोलना है। जैसा मैं कहूँ वैसा ही करना है। जब मैं संकेत करूँ तब हाथ उठाकर राजा को ऊँ नमः शिवाय कहकर अभिवादन करना है। इसके अतिरिक्त मुँह बंद रखना है।

कलुआ : मतलब?

पंडित : समझो आज तुम्हारा मौनव्रत है।

वररूचि : युवक! आज से तुम कलुआ नहीं, कालि हो! पंडितप्रवर कालि!
(कलुआ जोश से झूमने लगता है)

पंडित : वाह-वाह रे पंडितप्रवर कालि!

वररूचि : अनुचर! इसे रेशमी वस्त्र दो। राजकुमार की तरह तैयार कर इसे दरबार ले चलो। आज राजकुमारी से इसका विवाह होगा।
(विवाह की बात सुनते ही कलुआ वर की तरह तन जाता है)

अनुचर : ओह! ले बलैया! मुँह ने कान बीच बाजार दूकान! वाह! बियाह की बात सुनते ही कैसे तन गया है। कल तक इसकी माँ इसकी शादी के लिए कबुला-पाती करती रही। उच्चैठ भगवती को भी जोड़ा छागर गछे हुए थी। कहाँ कोई काली-कलूटी कनिञा भी नहीं और कहाँ राजकुमारी से बियाह! हाय रे भाग्य! (मध्यम स्वर में) ऐसे बेमेल बियाह करानेवालों को छोड़ना मत माँ! रौरव नर्क में भी इनका ठेलमठेल ही कराना।
(वररूचि और पंडित गुस्साते हैं। अनुचर उनके पीठ पीछे दोनों हाथों की उँगलियाँ मोड़कर चिढ़ाता है।)

(यवनिका पात)

दृश्य- दो

(राज दरबार का दृश्य। चिन्तित राजा और राजकुमारी अलग-अलग आसनों पर विराजमान हैं। कुछ आसन रिक्त हैं। पंडित वररूचि का आगमन)

वररूचि : महाराज की जय हो। महाराज आप अब भी चिंतित हैं! चिंता का कारण क्या है?

राजा : विवाह योग्य पुत्री का पिता होना ही चिंता का कारण है और जब पुत्री विदुषी गार्गी की तरह प्रण कर ले कि जो मुझे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा वही मेरा पति होगा तब तो स्थिति और भी विकट हो जाती है। मैं पुत्री के भविष्य की ही चिंता कर रहा हूँ।

वररूचि : चिंता और आप! चिंता करें आपके दुश्मन! राजकुमारीजी तो साक्षात् सरस्वती हैं। उनका प्रण सर्वथा उचित है महाराज!

राजा : वाचक्नवी गार्गी की तरह उसका प्रण उचित हो सकता है पर हमारे लिए तो यही परेशानी का कारण है।

वररूचि : आप चिंता न करें राजन्! गार्गी को जिस तरह याज्ञवल्क्य मिले उसी तरह राजकुमारी विद्योत्तमा को भी मनोनुकूल वर अवश्य मिलेगा।

राजा : महापंडित वररूचि! आपकी वाणी संबल देती है, पर प्रश्न अभी भी वही है, आखिर कब तक?

वररूचि : महाराज! इस प्रक्षेत्र के सारे विद्वान् राजकुमारी से शास्त्रार्थ में परास्त हुए। यहाँ तक कि मैं भी! मैं भी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में परास्त हुआ हूँ। परंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि राजकुमारीजी का मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण होगा।

राजा : शीघ्र! आखिर कबतक? इससे मेरे प्रश्नों का समाधान कहाँ! मेरी चिंताओं का निराकरण कहाँ?

वररूचि : आप निश्चिंत रहें महाराज! आपकी इसी चिंता को दूर करने के लिए मैं एक बार फिर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। आप आदेश तो करें।

विद्योत्तमा : **(बीच में)** नहीं पिताश्री! एक बार पराजित पंडित से दुबारा शास्त्रार्थ करना उचित नहीं।

वररूचि : नहीं राजन्! मैं शास्त्रार्थ के लिए दुबारा प्रस्तुत भी नहीं हूँ। मैं तो मालिनी तट अवस्थित कोटद्वार के महर्षि कण्व गुरुकुल के सर्वश्रेष्ठ स्नातक कालि की बात कर रहा हूँ। ये उच्च कुल-गोत्र में उत्पन्न सकल गुण-शील के आगर हैं। अग्रत: सकलं शास्त्रं पृष्ठत: सशरं धनु: की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति हैं। मैं उस पंडितप्रवर कालि की बात कर रहा हूँ।

राजा : अत्यंत सुखद! पुत्री! तुम्हारी सहमति हो तो...

विद्योत्तमा : हाँ पिताश्री! मैं तैयार हूँ। परंतु एक प्रश्न मेरे मन में कौंध रहा है कि आज सुबह ही आचार्य स्वयं एवं उनके एक शिष्य मुझसे शास्त्रार्थ में पराजित होकर गए थे। इतनी शीघ्रता से हजारों योजन दूर कोटद्वार के कण्व ऋषिकुल के सर्वश्रेष्ठ स्नातक कहाँ से ले आए? यह छल तो नहीं?

वररूचि : राम-राम! छल और वह भी राजकुमारी से! शिव-शिव-शिव!! राजन्! पंडितप्रवर कालि कण्व ऋषिकुल के सर्वश्रेष्ठ स्नातक अवश्य हैं पर वे मूलत: एक मैथिल ही हैं। संयोग से आज ही कोटद्वार से अपने घर मिथिला पधारे हैं और मैं उन्हें यहाँ ले आया। यह कोई छल नहीं है मात्र एक सुखद संयोग है।

राजा : यह सुखद संयोग ही हो! पंडितप्रवर को सम्मान सहित बुलाया जाय।

विद्योत्तमा : **(स्वगत)** सुबह परास्त होकर गए फिर अभी आए। कहीं कोई षड्यंत्र तो नहीं? अच्छा! **(कुछ सोचकर)** जब सुबह स्वयं हारकर जा चुके हैं तब फिर क्या! देखते हैं।

वररूचि : कहाँ खो गई हैं राजकुमारीजी! **(आवाज देते हैं)** अनुचर! पंडितप्रवर कालि को सम्मान सहित लाया जाए।
(युवा पंडित के साथ सजे-धजे राजकीय परिधान में कलुआ का प्रवेश। अनुचर एक छत्र तानकर कालि को उचित मान दे रहा है।)

वररूचि : पंडितप्रवर कालि! आपका स्वागत है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पंडित कालि हमारी राजकुमारी के सभी मानदंडों पर पूर्णत: खरे उतरेंगे एवं उनके जीवन को खुशियों से भर देंगे।
(एक सभासद कालि का स्वागत करते हुए आसन तक ले जाते हैं। राजा बैठने का संकेत करते हैं। सम्मानपूर्वक उन्हें आसन देते हैं।)

राजा : **(विद्योत्तमा से)** ये तो उच्च कुल-गोत्र के लगते हैं। पुत्री! क्या ये तुम्हारी शर्त्तों के अनुरूप हैं? तुम शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत हो?

विद्योत्तमा : हाँ! मैं प्रस्तुत हूँ पिताश्री! आगे सबकुछ भविष्य के गर्भ में है।

राजा : शास्त्रार्थ शुरू किया जाए। पंडित कालि...

वररूचि : **(सहसा)**... एक समस्या है राजन्!

राजा : **(साश्चर्य)** अब क्या?

वररूचि : अभी इनका मौनव्रत चल रहा है अत: शास्त्रार्थ मात्र संकेत से ही संभव होगा। यदि विदुषी विद्योत्तमा तैयार हो तो।

विद्योत्तमा : **(कुछ सोचते हुए)** मैं प्रस्तुत हूँ। संकेत में ही सही, पर उत्तर इन्हें स्वयं देना होगा। किसी दूसरे का संकेत या किसी से पूछकर दिया गया संकेत मान्य नहीं होगा।

वररूचि : एवमस्तु। पंडितप्रवर कालि! एक वाक्य से राजन का अभिवादन करें। **(कलुआ घबरा जाता है। कभी शिव शिवाय कभी ऊँ नम: शिवाय कहना चाहता है पर घबराहट में किसी तरह उसके मुख से उशंरटं शब्द निकल जाता है। सभासद हतप्रभ हैं। लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगते हैं।)**

वररूचि : **(सबों को देखकर)** आप सभी चकित हैं कि आखिर पंडितराज ने कहा क्या है! तो धैर्यपूर्वक सुनें। पंडितराज ने अपने श्लोक के चार पदों के आद्यक्षरों से एक शब्द बनाकर चमत्कारपूर्वक अपने मौनव्रत की रक्षा की और राजा का अभिवादन भी कर दिया।

उमयो सहितो रुद्र:
शंकर: शूलपाणिभृत्।
रक्षतु त्वां महिपाल
टंकार बलगर्वित:॥

भाव है कि हे टंकार बलगर्वित राजन्! हाथों में त्रिशूल धारण करनेवाले उमा सहित रुद्र शंकर आपकी रक्षा करें।

पंडित : वाह-वाह! एक वाक्य की जगह एक शब्द! गागर में सागर! सीपी में समुद्र!! मेधा का यह अनुपम चमत्कार! **(उपस्थित सभी लोग वाह-वाह करते हैं। राजा भी प्रसन्न होते हैं। विद्योत्तमा भी मुस्कुराती है)**

वररूचि : राजकुमारी! अब आप प्रश्न करें।
(विद्योत्तमा अपनी तर्जनी उँगली दिखाती है। कलुआ को लगता है कि कह रही है कि तुम्हारी एक आँख फोड़ दूँगी। वह यह सोचकर कि यदि तू मेरी एक आँख फोड़ेगी तो मैं तुम्हारी दोनों आँखें फोड़ दूँगा, अपनी तर्जनी और मध्यमा उँगलियाँ विद्योत्तमा की ओर तान देता है)

वररूचि : वाह! आपके प्रश्न और आपकी स्थापना को खंडित करता हुआ एक शानदार उत्तर! आपका प्रश्न यही है न कि परमब्रह्म या ईश्वर एक है?
(विद्योत्तमा स्वीकृति में सिर हिला संकेत देती है) देवि! ब्रह्म के साथ जीव के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। अद्वैत की स्थिति यहाँ मान्य कैसे हो सकती है! सृष्टि की रचना ही बिना द्वैत के संभव ही नहीं। बीजदाता परमपिता भी बीज धारण करनेवाली धरित्री के अभाव में सर्जना करने में सक्षम नहीं हो सकता। शिव और शक्ति का संयुक्त रूप अर्द्धनारीश्वर भी मूलतः दो पृथक् और स्वतंत्र अवयवों का संयोग ही है, वे एक नहीं हैं। अतः पंडितप्रवर कालि के उत्तर से आपकी स्थापना खंडित हुई है। राजन्! अब आपका संकट समाप्त हुआ। अब विवाह की तैयारी करें।

विद्योत्तमा : रुकें आचार्य! आपके उत्तर से मैं संतुष्ट हूँ फिर भी और परीक्षण की आवश्यकता है। अब मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें पंडितप्रवर!
(विद्योत्तमा अपना पंजा दिखाती है। कलुआ समझता है- यह कह रही है कि तुझे थप्पड़ मारूँगी। कलुआ थप्पड़ का जवाब मुक्का से देने की बात सोचकर विद्योत्तमा के सामने अपना मुक्का तान देता है।)

वररूचि : देवि! आपने पाँच उँगलियों से पंचभूत की बात की। क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर जैसे तत्त्वों का उल्लेख किया। पंडितराज कालि ने उनसे ही मिलकर एक शरीर की, इस जगती के निर्माण की बात की। उनका कथन है कि पाँचों तत्त्वों में एक ही आदि तत्त्व विद्यमान है। किसी पदार्थ के सूक्ष्म कण को अणु में, अणु को परमाणु में और परमाणु का भी अन्य छोटे कणों में विखंडन संभव है। इन विखंडित सूक्ष्मतम कणों में भी जैसे मूल तत्त्व समान ही रहता है उसी तरह पंच तत्त्व से रचित इस शरीर में एक ही जगती की स्थिति बनी रहती है। एक ही प्राण सक्रिय रहता है। जैसे पंचभूत से निर्मित एक शरीर वैसे ही पाँच उँगलियों से बनी एक मुट्ठी! अब भी कोई शक है राजकुमारी? **(विद्योत्तमा शर्माती है। वररूचि राजा से मुखातिब होकर)** राजन्! वरमाला मँगवाई जाय।

पंडित : महर्षि कण्व के सर्वश्रेष्ठ शिष्य कालि की जय हो! जय हो!! **(जय-जयकार के शोर में शहनाई का स्वर मिल जाता है। थाल में जयमाल, दीप, सिंदूर, अक्षत-चंदन आदि लिए प्रियंवदा और रानी का आगमन, विद्योत्तमा एवं कलुआ एक दूसरे को जयमाल पहनाते हैं और उपस्थित श्रेष्ठजन दुर्वाक्षत मंत्र से नव दम्पति को आशीर्वाद देते हैं!)**

(यवनिका पात)

दृश्य- तीन

(भूमि पर सुहाग की सेज सजी हुई है। आसव और पानी के अलग-अलग कलश, चषक और जलपात्र सजे हुए हैं। पूर्व दृश्य में प्रयुक्त दोनों जयमाल दीवार पर रंग-बिरंगे चित्रों के बीच सुशोभित है। कक्ष में बैठने-उठने के लिए कुछ उपस्कर पड़े हैं। एक तरफ फूलों से सजा खूबसूरत झूला लगा हुआ है। भोर की बेला में शुक्र ग्रह तारा के रूप में चमक रहा है। सुहाग सेज पर सजाए गए फूल वैसे ही हैं। सेज के एक कोने में उदास विद्योत्तमा गठरी बनकर बैठी हुई है।)

प्रियंवदा : **(प्रवेश करते हुए प्रफुल्लित स्वर में)** ओह! भोर का यह कितना सुहाना समय है! आम्रमंजरियों की महक मदन रस टपका रही है। शीतल मंद पवन अंग-अंग में अनंग जगा रहा है, सुरसुरी पसर रही है। इसपर से कोयल की कूक! ओह! लगता है मेरी सखी की सुहागरात बड़ी मादक रही होगी। चलो पूछते हैं।

(विद्योत्तमा के पास चुपके से जाकर) तुम अभी तक सुहाग रात की खुमारी में ही हो क्या? उठो मुझे रात की केलिकथा सुनाओ, नखक्षत और दंतक्षत की कथा कहो। यह कैसा होता होता है? चलो चुम्बन चिह्न दिखाओ। आज मैं कुछ सुननेवाली नहीं हूँ। देख-सुनकर ही रहूँगी।

(सुहाग सेज के निकट आती है) देखो तो कितने जतन से भूमि पर सुहाग सेज सजाई गई। रानी माँ ने कहा था चतुर्थी विधि के बाद ही कोहवर में पलंग पर शय्या देनी है। आह! इसके फूल तो देखो! कितने सुंदर और मादक हैं। मैंने चुन-चुनकर बिछाए थे। **(सहसा कुछ फूल हाथ में लेकर)** अरे! ये तो वैसे ही हैं जैसे कल थे! मसले भी नहीं गए! इन फूलों में न तुम दोनों के देह की खुशबू है और न गर्म पसीने की गंध! न सिरहाने मंगलटीका या चूड़ामणि उतरी है और न पैताने बिछिया-पायल! बीच में न बाजूबंद उतरा है न हार! यह कैसी सुहागरात बीती है तुम दोनों की?
(विद्योत्तमा वैसे ही आँचल में मुँह छुपाए गुमसुम पड़ी रहती है।)

प्रियंवदा : **(आँचल हटाते हुए)-** ऐसे क्यों पड़ी हो? क्या रात भर में ही महर्षि कण्व के शिष्य ने सारा रस चूसकर सिट्ठी बना दिया? कहाँ हैं मेरी सखी के प्राणेश्वर!
(सहसा विद्योत्तमा प्रियंवदा की छाती में मुँह छुपाकर रोने लगती है)

प्रियंवदा : **(आश्चर्यचकित होकर)** क्या हुआ सखी?

विद्योत्तमा : **(रोती हुई)** छल! महाछल!! आचार्य ने शास्त्रार्थ में अपनी और अपने शिष्य की पराजय का भयंकर प्रतिशोध मुझसे लिया। एक निपट मूर्ख के साथ मेरा विवाह करा दिया।

प्रियंवदा : यह क्या कह रही हो?

विद्योत्तमा : सर्वथा सत्य कह रही हूँ प्रियंवदे! वे महर्षि कण्व ऋषिकुल के सर्वश्रेष्ठ स्नातक की बात तो छोड़ो वह एक सामान्य छात्र भी नहीं। वह निपट मूर्ख गँवार है।

प्रियंवदा : यह कैसे संभव है! उसने तो तुमसे शास्त्रार्थ किया था? मैं कुछ समझ नहीं पा रही। मुझे समझाओ।

विद्योत्तमा : सुनो सखी! यदि तुमसे नहीं कहूँगी तो किससे कहूँगी। एक-एक बात बता रही हूँ। सुनो! **(प्रियंवदा खिसक जाती है।)**

(फ्लैशबैक- सुहाग रात का दृश्य। सुहाग सेज पर सोलह श्रृंगार कर विद्योत्तमा बैठी हुई है। मस्ती में कलुआ का प्रवेश। विद्योत्तमा को देखकर आह भरता है।)

विद्योत्तमा : शुभ स्वागतम प्रियवर! हमारे मधुर मिलन की यह रात है। आज मेरे निकट बैठकर अपने विषय में कुछ बताएँ स्वामी।

कलुआ : बताने के लिए तो पूरा जीवन पड़ा है। आज तो मस्ती में मजा लेने का दिन है।

विद्योत्तमा : इस तरह की बहकी बातें क्यों करते हैं?

कलुआ : शादी किए हैं! बेकार की बातों में समय क्यों गँवाना! जल्दी शुरू करो!
(विद्योत्तमा झटके में खड़ी हो जाती है।

विद्योत्तमा : **(कठोर स्वर में)** सच-सच बताओ! तुम कौन हो?

कलुआ : मैं कौन हूँ! अरे मैं तुम्हारा पति और तुम मेरी पत्नी!

विद्योत्तमा : कैसा पति! कैसी पत्नी!

कलुआ : हमारी शादी हुई है।

विद्योत्तमा : **(झिड़कते हुए)** शादी हुई है! अरे ऐसे होती है शादी? यह शादी नहीं हुई यह मेरे साथ छल हुआ है! अरे दुष्ट, स्वार्थी, नीच, निर्लज्ज! तुझे छल करते हुए लज्जा नहीं आई?

कलुआ : छल से हुई हो या भाग्य से! शादी तो हो गई। अब मैं तेरा पति और तुम मेरी पत्नी! अपने पति को अपशब्द कहते हुए तेरी जीभ क्यों नहीं जल गई?

विद्योत्तमा : पाप किया तुमने और जीभ जले मेरी! वाह! क्या विधान है! तुम अधम महापापी ही नहीं तुम धूर्त्तराज और ठग शिरोमणि भी हो!। नारी देह लोलुप कापुरुष!

कलुआ : **(आवेश में)** मैं कापुरुष नहीं!

विद्योत्तमा : चुप रह रे कायर! नारी को मात्र मनोरंजन का साधन माननेवाले को कापुरुष कहना ही उचित है। धिक्कार है तुम्हारे पुरुषार्थ पर।

कलुआ : **(आवेश में)** मेरे पुरुषार्थ को गाली मत दो!

विद्योत्तमा : बड़े आए पुरुषार्थ वाले! छल से विवाह करनेवाले का क्या पुरुषार्थ! पुरुषार्थ तब होता जब स्वयंवर की शर्त्त के अनुसार शास्त्रार्थ में मुझे परास्त कर मुझसे विवाह करते। छि: ! तुमने तो छल किया है! तुम क्लीव और नपुंसक हो! धिक्कार तेरी मर्दानगी पर!

कलुआ : **(आवेश में थर-थर काँपते हुए)** बस बस बस!! गोर माउगि गौरवे आन्हर! अरे! धिक्कार तुम्हारी सुंदरता पर! थूकता हूँ तेरी बुद्धि पर! **(खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठकर)** ये धरती सुने! ये आकाश सुने! ये चाँद-तारे सुनें! इस रात का अंतिम प्रहर सुने। तीनों लोक सुने! सब लोग सुनें! तुम भी सुनो ऐ घमंडी स्त्री! मेरा

प्रण सुनो! एक दिन मैं तुम्हारे ज्ञान का घमंड अवश्य चूर करूँगा और जबतक इस योग्य नहीं बनूँगा तबतक इस चौकठ पर पैर नहीं धरूँगा। और सुनो! जिस दिन तुम्हारा मान-मर्दन करूँगा उसी दिन तेरा परित्याग कर दूँगा। कल को किसने देखा है। ब्याधा-हत्यारा वाल्मीकि जब रामायण लिख सकता है तब ये निश्छल कलुआ क्या नहीं कर सकता! आज तो छल से तुझे पंडितों ने हराया पर एक दिन सचमुच में मैं तुझे हराकर तेरा सारा गुमान तोड़ दूँगा। इसके बाद तुम्हारा परित्याग भी करूँगा। उस दिन तुम मेरा पुरुषार्थ देखना। जय माँ भगवती!!

(कलुआ पैर पटकते हुए जय माँ भगवती का जयनाद करता हुआ निकल जाता है। विद्योत्तमा बेसुध होकर गिर जाती है। फ्लैशबैक समाप्त होते ही प्रियंवदा और विद्योत्तमा फ्लैशबैक के पूर्व स्थान पर नजर आती है।)

विद्योत्तमा : वे चले गए प्रियंवदा! उन्होंने मेरा परित्याग कर दिया। ओह! आवेश में मुझसे यह क्या हो गया!

प्रियंवदा : क्या?

विद्योत्तमा : मेरे सपनों में आचार्य ने आग लगा दी। मैंने गुस्से में अपने स्वामी को दुष्ट, नीच, कायर, धूर्त्त, ठग और न जाने क्या-क्या कहा। वे उत्तेजित नहीं हुए, शांत रहे पर जैसे ही मैंने उन्हें क्लीव और नपुंसक कहा तभी जैसे क्षण में छनाक हो गया!

प्रियंवदा : **(अधीरता से)** किधर? कहाँ हैं?

विद्योत्तमा : पता नहीं! चले गए। एक दिन आकर सबों के समक्ष मेरा परित्याग करेंगे! आज भी परित्याग! कल भी परित्याग!! हाय रे मेरा भाग्य! प्रियंवदे! कदाचित् मैं उस मूर्ख के साथ जी भी लेती पर परित्यक्ता जीवन मैं नहीं जी सकूँगी। सखी! तुम दो घड़ों का प्रबंध करो। मैं गर्दन में बाँधकर नदी में डूब मरूँगी।

प्रियंवदा : **(विद्योत्तमा के मुँह पर हाथ रखकर)** यह क्या बोलती हो तुम! जाकर नदी में डूब मरें वे आचार्य जिन्होंने छल जैसा कुकर्म किया। तुमने तो माता सीता और विदुषी गार्गी की परंपरा का पालन किया है। तुम्हें प्राण देने की आवश्यकता नहीं है। यह वीरोचित नहीं कायरों का कार्य है। तुम स्वयं सरस्वती हो! मैं तुम्हें क्या कहूँ? पर देखना एक दिन सब मंगल होगा।

विद्योत्तमा : अब क्या मंगल होगा?

प्रियंवदा : कौन जानता है कि भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है! समय बहुत बलवान होता है। गिरिजा भगवती सब मंगल करेंगी। हम सबलोग तुम्हारे साथ हैं।

विद्योत्तमा : ओह! घर के लोग कितने प्रसन्न थे! पिताश्री की खुशियों का पारावार नहीं था! अब उनके समक्ष कैसे जाऊँ! उन्हें कैसा लगेगा? ओह! सुबह भी हो गई। कैसे कहें, क्या करें! कुछ समझ में नहीं आ रहा।

प्रियंवदा : कहना तो पड़ेगा। चलो, तुम चिंता मत करो। मैं सब सँभाल लूँगी। सुख और दुख में यही तो फर्क है कि सुख साझा करने से बढ़ता है और दुख साझा करने से घटता है। चलो!
(विद्योत्तमा को पकड़कर आगे बढ़ती है)

(यवनिका पात)

दृश्य- चार

(हवनकुंड से धीमा धूम्र प्रवाह जारी है। अग्नि बुझ रही है। वातावरण में गुग्गुल की गंध अभी भी पसरी हुई है। यहीं कालिदास और कुमारदास बैठे हुए हैं।)

कुमारदास : मित्र कालिदास! हम सबों की शिक्षा-दीक्षा अब पूर्ण हो चुकी है। आपने देरी से पढ़ाई शुरू की पर समाप्त सबसे पहले किया। यह अत्यंत आह्लादकारी है।

कालिदास : यह आह्लादकारी नहीं, एक दुखद और करुण गाथा है मित्र!

कुमारदास : करुण गाथा! यह क्या कह रहे है? मेरी जिज्ञासा शान्त करें मित्र!

कालिदास : एक निर्धन और अपमानित साधारण व्यक्ति की आन्तरिक व्यथा का अनुमान एक राजकुमार नहीं लगा सकता। आपका मुझपर बड़ा उपकार है। मैं अपनी गाथा सुनाकर आपको और व्यथित करना नहीं चाहता मेरे मित्र!

कुमारदास : आपने मुझे मित्र कहा है। वह मित्र क्या जो मात्र सुख में साथ रहे। दुख में साथ रहनेवाला ही सच्चा मित्र है! मुझसे अवश्य कहें अपनी गाथा। और अब तो कहना ही पड़ेगा! इसे मेरा हठ ही समझें।

कालिदास : राजकुमार! हठ नहीं आपका आदेश!

कुमारदास : मित्र! मैं सिंहल देश का राजकुमार अवश्य हूँ पर उससे पहले मैं आपका मित्र हूँ। मुझे इसका भान है कि आपके अंतस्तल में कोई संताप छुपा हुआ है। आज अपने मन की वह गाँठ खोल ही दें मित्र!

कालिदास : ओह! कहाँ से शुरू करूँ! मैं जानकी जन्मभूमि मिथिला का एक पितृहीन विपन्न ब्राह्मण! मेरी माँ दूसरों के घरों में कुटिया-पिसिया कर अपना और मेरा पालन करती थी। एक दिन मैं माँ के कहने पर भोजन बनाने के लिए वन में लकड़ी काटने गया था। मूर्खतावश जिस डाल पर बैठा था उसे ही काट रहा था। दो पंडितों ने मुझे देखा और हँसने लगे। एक ने कहा कि जैसा कहें वैसा करोगे तो राजकुमारी से ब्याह करा देंगे। मैं तैयार हो गया।

कुमारदास : वाह! मनोरंजक कथा है। फिर....

कालिदास : मनोरंजक नहीं दुखद! असल में वे सब एक राजकुमारी से विवाह करने गए थे। राजकुमारी की शर्त्त थी कि जो मुझे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा उसी से विवाह करूँगी। हुआ उल्टा! शास्त्रार्थ में पराजित होकर वे पंडित अपमानित हुए थे और प्रतिशोध में उस विदुषी का ब्याह किसी बज्रमूर्ख से कराने की योजना के अन्तर्गत मेरा चुनाव कर मुझे महर्षि कण्व गुरुकुल के सर्वश्रेष्ठ स्नातक रूप में प्रस्तुत किया।

कुमारदास : **(हँसकर)** वह तो आप हैं ही। कल ही तो दीक्षान्त समारोह में गुरुश्रेष्ठ ने आपको अंकपाश में भरकर सर्वतो जयं इच्छेति पुत्रात् शिष्यात् पराजयेत् पढ़ते हुए अपने अश्रुओं से आपके मस्तक को सिंचित किया था!

कालिदास : यह गुरुवर की कृपा है मित्र!

कुमारदास : हाँ। पर आपकी कथा भी बेमिसाल है। राजदरबार में आगे क्या हुआ?

कालिदास : इन लोगों ने मेरे मिथ्या मौनव्रत के विषय में कहकर संकेत से शास्त्रार्थ शुरू कराया।

कुमारदास : अद्भुत! कैसे हुआ यह अनोखा शास्त्रार्थ? मेरी जिज्ञासा चरम पर है मित्र! कृपया सुनाएँ।

कालिदास : राजकुमारी विद्योत्तमा ने एक उँगली दिखाई। मुझे लगा कि कह रही है कि वह मेरी एक आँख फोड़ देगी। मैंने अपनी तर्जनी और मध्यमा दिखा दी अर्थात् मैं तुम्हारी दोनो आँखें फोड़ दूँगा।

कुमारदास : **(हँसकर)** वाह!

कालिदास : पंडित वररूचि ने आत्मा के साथ परमात्मा, ब्रह्म के साथ जीव, अद्वैत-द्वैत के रूप में इसकी विस्तृत व्याख्या कर राजकुमारी को शान्त कर दिया। फिर राजकुमारी ने अपना पंजा दिखाया। मुझे लगा कि वह थप्पड़ मारेगी तो मैंने उसे अपना मुक्का दिखाया।

कुमारदास : वाह रे वाह! **(हँसते हुए)** अभूतपूर्व शास्त्रार्थ!

कालिदास : आचार्य वररूचि ने क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर जैसे पंचतत्त्व से एक शरीर की रचना और सब में एक ही मूलतत्त्व की विद्यमानता की अपनी वैदुष्यपूर्ण व्याख्या से राजकुमारी को उलझाकर नत कर लिया और हमारा ब्याह हो गया।

कुमारदास : ओह हो! राजकुमारी अवश्य महासुन्दरी रही होंगी! आपकी प्रेरणापुंज! तभी तो आपकी रचनाओं में नारी-सौंदर्य का ऐसा चमत्कारपूर्ण वर्णन हुआ है।

कालिदास : नहीं मित्र! वह सुंदर अवश्य थी पर मुझे उसे गौर से देखने का सुयोग ही नहीं मिला।

कुमारदास : **(साश्चर्य)** क्यों? फिर क्या हुआ?

कालिदास : फिर क्या! कोहबर की रात रहस्य अनावृत्त हो गया। राजकुमारी समझ गई कि उसके साथ वररूचि ने छल किया। उसने मेरा अपमान किया। मुझे ठग, पापी, कामी, नीच आदि अनेक अपशब्द कहे। मैं चुपचाप अश्रुपात करता हुआ सुनता रहा। फिर...

कुमारदास : फिर क्या?

कालिदास : फिर जब उसने मुझे क्लीव और नपुंसक कह दिया तब पता नहीं कैसे मैं सहसा आवेशित हो गया। मैंने गुस्से में आकर प्रण कर लिया।

कुमारदास : प्रण! कैसा प्रण?

कालिदास : यही कि एक दिन उसे शास्त्रार्थ में पराजित कर उसका परित्याग कर दूँगा।

कुमारदास : ओह! अद्‌भुत भी और दुखद भी! आगे क्या हुआ फिर...

कालिदास : फिर उच्चैठ के एक गुरुकुल में रसोइया की चाकरी करने लगा। बरसात की एक भयानक संध्या थुम्हाणी नदी उफान पर थी। गुरुकुल से प्रत्येक संध्या एक बटुक उस पार अवस्थित भगवती के मन्दिर में दीप जलाने जाता था। उस भयानक बरसाती रात में कोई छात्र जाने को तैयार नहीं हुआ।

कुमारदास : वाह!

कालिदास : मैं तो एक कलंकित जीवन जी रहा था। ऐसे जीवन का क्या मोह! जीने की इच्छा ही नहीं थी। सहसा मुझे आंतरिक प्रेरणा हुई और मैं इस विकराल समय में भी भगवती को दीप दिखाने मंदिर जाने को तैयार हो गया।

कुमारदास : ओह!

कालिदास : मैं जान पर खेलकर उफनती नदी पारकर दीप जलाने मन्दिर पहुँचा। भगवती को साँझ दिखाकर प्रणाम कर वापस होने के लिए मुड़ा तो मुझे लगा कि कोई प्रमाण छोड़ना चाहिए कि मैं यहाँ दीप जलाने आया था। नहीं तो बटुक और गुरुजन मुझे झुट्ठा कहेंगे।

कुमारदास : वाह! परिस्थिति के अनुकूल सोच!

कालिदास : हाँ मित्र! वहाँ कुछ दिखा नहीं तब प्रमाण स्वरूप दीपक के नीचे की करिखा ही भगवती को लगाकर साक्षी रखने का विचार आया। करिखा लगाते समय अनेक विचार मेरे मन में उत्पन्न हो रहे थे। मैंने भगवती से विद्या का वर माँग लिया।

कुमारदास : ओह! विलक्षण!

कालिदास : मंदिर में ही मुझे प्रेरणा हुई कि मैं ऋषि कण्व के आश्रम में जाऊँ। मिथिला से सहस्त्रों योजन दूर गढ़वाल क्षेत्र के मालिनी नदी के तटपर अवस्थित कोटद्वार के इस गुरुकुल में मैं महर्षि कण्व का शिष्य बन गया।

कुमारदास : वाह!

कालिदास : आप तभी से मेरे साथ हैं। मेरी दरिद्रता और अधिक उम्र के कारण जब कुछ सहपाठी मेरा उपहास उड़ाते थे तो आप ढाल बनकर मेरी रक्षा करते रहे।

कुमारदास : यह तो मित्र का धर्म ही है कि समय पर मित्र के काम आए! आपकी कथा वैसी ही अद्‌भुत है जैसी आपकी रचना! मित्र! मैं द्रवित हूँ आपकी गाथा सुनकर। आपसे कुछ याचना करना चाहता हूँ। आप वचन दें कि निराश नहीं करेंगे।

कालिदास : मैं तो शुरू से आपके समक्ष याचक ही रहा। आपका बहुत ऋण है मुझपर! मेरा रोम-रोम आपका कृतज्ञ है। मैं निराश नहीं करूँगा। कहकर देखें।

कुमारदास : नहीं। मित्र पर कोई ऋण नहीं होता। आपने भी तो मेरे जानकी हरण काव्य का शोधन और संस्कार किया। यह ऋण नहीं, मित्र का धर्म है बन्धु!

कालिदास : अवश्य!

कुमारदास : सिंहलराज मोग्गलान का दूत आश्रम आया हुआ है। मुझे युवराज का दायित्व ग्रहण करने अपने देश जाना है। हमलोगों के बिछड़ने का समय आ गया है। बिना वचन लिए मैं याचना नहीं कर सकूँगा। आप उम्र और योग्यता में मुझसे श्रेष्ठ हैं। अपने इस अनुज को वचन दें कृपया! **(कालिदास को अपने अंकपाश में भर लेता है)**

कालिदास : यह कैसा विस्मय है हे भगवती! जन्म-जन्म का याचक मैं आज दाता कैसे बन गया! जिसके लिए दो संध्या भोजन की निश्चित व्यवस्था नहीं उस अकिंचन को सिंहल के राजकुमार और भावी राजा कुमार धातुसेना ने अपना अग्रज कहा, मुझे अंकमालिका देकर मुझसे कुछ माँगा! **(दोनों हाथ उठाकर)** माँगो अनुज! आज कदाचित् मेरे प्राण भी माँग लिए तो हँसकर अर्पित कर दूँगा। वचन देता हूँ कि जो कहोगे वही करूँगा।

कुमारदास : आपके प्राण नहीं चाहिए मुझे। आपके लिए तो मैं अपनी जान दे सकता हूँ। मुझे मात्र तीन वचन चाहिए।

कालिदास : मात्र तीन वचन! कहो अनुज। इस हवनकुंड की पावन अग्नि के समक्ष वचन देता हूँ। तुम जो कहोगे वही करूँगा!

कुमारदास : पहला वचन कि आप भाभी विद्योत्तमा को क्षमादान देकर ससम्मान अपने साथ रखेंगे। आप मानें या न मानें परंतु यह सत्य है कि महाकवि कालिदास के निर्माण में विद्योत्तमा के उन कटु वचनों का बहुत बड़ा योगदान है। उन्हीं शब्दों ने प्रेरणापुंज बनकर आपको मार्ग दिखाया है।

कालिदास : मित्र!

कुमारदास : दूसरा वचन यह दें कि महाराज विक्रमादित्य के रत्न बनने के प्रस्ताव पर अपनी स्वस्ति देकर दूत को विदा करेंगे। तीसरा वचन... वचन नहीं निवेदन कि आप जीवन में कम-से कम एक बार मेरे देश पधारेंगे।

कालिदास : अवश्य!

कुमारदास : वैसे अनुराधापुर हमारी पारंपरिक राजधानी है परंतु विपत्ति काल में रोहुणा प्रक्षेत्र के माटरा ने हमें बहुत सहारा दिया। अतः मैं माटरा में ही अपनी राजधानी रखूँगा। आप वहीं आएँ मित्र! लंका आने पर मैं महाबली रावण की विद्वत्ता, उनका वैभव, किला, पुष्पक विमान, अशोक वाटिका आदि दिखाऊँगा।

कालिदास : हाँ मित्र! मैं जन्म से मैथिल हूँ। माता सीता मिथिलेश सीरध्वज जनक की सुता थीं। इस नाते वो हमारी आराध्या हुईं। मैं उस अशोक वाटिका को अवश्य देखना चाहता हूँ जहाँ मिथिलेशकुमारी दशानन के कारागार में रहीं।

कुमारदास : हाँ! लंकेश का महल नुवारा एलिया क्षेत्र में था। यहाँ से उदा घाटी जाने के मार्ग में अभी भी असंख्य अशोक के पेड़ हैं। यहीं अशोक वाटिका थी।

कालिदास : मैं अवश्य देखना चाहूँगा। **(भावुक होता स्वर)** मिथिला में बहन-बेटियों की ससुराल में संकट आने पर नैहर से पुछारी की प्रथा है। मुझे पता नहीं उस समय माता सीता की पुछारी मिथिला से हुई या नहीं! तब भी मैं यह कार्य अवश्य करना चाहूँगा। कम से कम अपनी आँखों की दो बूँदों से माता सीता को अपने नैहर की अनुभूति अवश्य कराना चाहता हूँ। ओह!

कुमारदास : आपकी भावुकता अद्‌भुत है मित्र! मैं भी आपको वचन देता हूँ कि वापसी में मैं आपके साथ मिथिला अवश्य चलूँगा। जनकपुरी का दर्शन करूँगा और उस उच्चैठ भगवती के मन्दिर जाकर उनकी पूजा करूँगा जिनकी कृपा से एक बज्रमूर्ख विश्व-विश्रुत महाकवि बन सका।

कालिदास : अवश्य मेरे मित्र!

कुमारदास : क्या आपको पता है कि भारतवर्ष में जैसे भगवान् राम पूजित हैं वैसे लंका में रावण सर्वत्र पूजित नहीं हैं पर महाबली और विद्वान् रूप में वे सर्वत्र प्रतिष्ठित अवश्य हैं। ऋग्वेद का भाष्य, रावणीयम्, शिशु चिकित्सा पर अर्क प्रकाश, सामुद्रिक विद्या पर अरुण संहिता, नाड़ी विज्ञान, तंत्र प्रकाश, शिव ताण्डव स्तोत्र, रावण संहिता आदि की रचना करनेवाले विद्वान् रावण ने बहन की आन के लिए जानकी का हरण अवश्य किया पर कभी सीता की मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया।

कालिदास : अवश्य मित्र!

कुमारदास : हमारे यहाँ भ्रातृधर्म, पुत्रधर्म और देशधर्म के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले महाबली कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत मेघनाद को बहुत प्रतिष्ठा मिली पर देशद्रोही विभीषण को कोई मान नहीं मिला।

कालिदास : आश्चर्य!

कुमारदास : हाँ मित्र! आज भी कोई अपने शिशु का नाम विभीषण नहीं रखता। राम-लक्ष्मण भले देव हों पर लंका के लिए तो वे आक्रमणकारी ही थे। ऐसे समय धर्म की ओट लेकर भ्रातृद्रोह या देशद्रोह करना कदापि उचित नहीं था।

कालिदास : हाँ मित्र!

कुमारदास : आज भी लोग यही मानते हैं कि बल-वैभव-विद्या में श्रेष्ठता के बाद भी इसी कुलघाती-देशद्रोही के कारण लंका का पराभव हुआ। देशद्रोह किसी महापाप से कम नहीं है। देश किसी भी धर्म से बड़ा होता है।

कालिदास : निश्चय मित्र! धर्मभ्रष्ट होने पर प्रायश्चित का प्रावधान है। देशद्रोह का तो कोई प्रायश्चित ही नहीं है। जब मनुष्य का धर्म उसके देशहित पर भारी पड़ने लगे तो ऐसे धर्म का परित्याग कर देश बचाना ही सबसे बड़ा धर्म है।

कुमारदास : सत्य है मित्र! मेरे पितामह धातुसेना ने भी देश के लिए धर्म का परित्याग किया था।

कालिदास : क्या?

कुमारदास : हाँ! मेरे पितामह धातुसेना बचपन में ही वैराग्य धारण कर चुके थे। जब दमिल राजाओं ने अनुराधापुर को पददलित किया तो एक दिन देश की पुकार सुन युवक धातुसेना ने जपमाला, भिक्षापात्र और चीवर का परित्याग कर तलवार उठा ली, लोगों को संगठित किया और पीठ्य का वध कर निज देश को उसके चंगुल से मुक्त कराया।

कालिदास : मित्र! **(हाथ जोड़कर)** मैं आपके उस महान् पितामह को प्रणाम करता हूँ। वे असली धर्म मर्मज्ञ थे।

कुमारदास : इसी कारण लोग उन्हें धर्मसेना भी कहते थे। उसी पितामह धातुसेना के नाम पर मेरा नाम कुमार धातुसेना रखा गया! मैंने आपके नाम कालिदास के अनुसरण में अपना साहित्यिक नाम कुमारदास रख लिया।

कालिदास : कालिदास और कुमारदास! वाह! भविष्य में लोग हमारी मित्रता का उदाहरण देंगे!

कुमारदास : अवश्य मित्र! मेरे वचन कब पूर्ण होंगे?

कालिदास : अभी पूर्ण करता हूँ मित्र! मैं आज ही महाराज विक्रमादित्य को अपनी स्वस्ति भेज देता हूँ। आपको दिए वचन के अनुपालन से सुहागरात को किया गया मेरा प्रण अपूर्ण रहेगा, खंडित होगा। इसका भान है मुझे। फिर भी मैं देवी विद्योत्तमा को आज क्षमादान देता हूँ।

कुमारदास : उत्तम!

कालिदास : आपके लंका विदा होने के बाद मैं भी महाराज विक्रमादित्य से मिलने प्रस्थान करूँगा। विद्योतम से मिलने भी जाऊँगा। एक बार आपके यहाँ माटरा आने के लिए मैं वचनबद्ध हूँ मित्र! मैं अवश्य आऊँगा।

कुमारदास : इस मान से मैं कृतार्थ हुआ मित्र! अब जाते समय एक बार अंकमालिका कर लूँ।
(दोनों एक-दूसरे को अंकपाश में भर लेते हैं।)

(यवनिका पात)

दृश्य- पाँच

(एक कक्ष में मलिन वस्त्रों में विद्योत्तमा बैठी हुई है। कुछ पांडुलिपि और कुछ ग्रंथ रखे दिखाई देते हैं। उनमें से विद्योत्तमा एक किताब ढूँढती है। मेघदूत की प्रतिलिपि निकाल कर पढ़ने लगती है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभि:
भारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु:

प्रियंवदा : **(प्रवेश करती हुई)** ओह! जब देखो तब पढ़ती रहती हो। यह क्या है?

विद्योत्तमा : यह साहित्य है। इसी साहित्य ने तो मुझे जीने का सहारा दिया है। देखो कवि क्या कहता है ?

प्रियंवदा : क्या?

विद्योत्तमा : कवि ने कहा है- दुबली-पतली, छोटे-छोटे दाँतोंवाली, पके तिलकोर के फल समान लाल अधरों वाली, पतली कमर, भीत हरिणी के समान नयनवाली, गहरी नाभिवाली, नितंबों के बोझ से मंद गतिवाली और स्तनों के भार से आगे झुकी ब्रह्मा की बेहतरीन कारीगरी दिख जाए, समझो वही मेरी प्रिया है।

प्रियंवदा : आश्चर्य है विद्योत्तमा! कवि को तुम्हारे विषय में कैसे पता! अरे कवि ने तो अक्षरशः तुम्हारा ही शब्दचित्र उकेरा है।

विद्योत्तमा : मेरा! मेरा ऐसा भाग्य कहाँ कि किसी कवि के काव्य का विषय बनूँ। इस पद में यक्ष ने अपनी पत्नी को अपना संदेश देने के लिए मेघ को दूत बनाकर भेजा है। उसे पहचानने के लिए यक्ष ने विरह से कातर अपनी पत्नी का चित्र बनाया है। मेरे पति ने तो आजतक मेरी सुधि नहीं ली! मेरा परित्याग कर दिया!

प्रियंवदा : बड़े निष्ठुर हैं! आखिर ठहरे तो पुरुष ही न!

विद्योत्तमा : निष्ठुर नहीं मनस्वी कहो! निष्ठुर तो उस रात मैं ही हो गई थी!

प्रियंवदा : चलो! मान गए कि मनस्वी हैं। परंतु क्या मनस्वी का मन इतना कठोर होता है कि वर्षों तक अपनी पत्नी की सुधि भी न ले?

विद्योत्तमा : मन पर लगी चोट बड़ी मारक होती है, कुछ करने नहीं देती।

प्रियंवदा : फिर भी?

विद्योत्तमा : फिर भी इस मेघदूतम् काव्य से तो लगता है कि किसी कवि ने मेरी सुधि अवश्य ली है।

प्रियंवदा : कैसे? यह किस कवि की रचना है?

विद्योत्तमा : तुम्हीं ने तो यह प्रतिलिपि उज्जैन से मिथिला होकर अंग जा रहे व्यापारी से रेशम मार्ग पर ली थी।

प्रियंवदा : उस प्रतिलिपि में तो कवि का नाम अवश्य होगा।

विद्योत्तमा : अरे याद नहीं? इस प्रतिलिपि का पहला पन्ना फटा हुआ था।

प्रियंवदा : हाँ, स्मरण हुआ। इसमें मूल रचनाकार का नाम वाला पृष्ठ ही नष्ट हो गया था।

विद्योत्तमा : इसके कवि जो भी हों परंतु उन्होंने इसमें स्वयं को मैथिल होने का संकेत किया है।

प्रियंवदा : मैथिल!

विद्योत्तमा : हाँ! *जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु, धनु:खण्डमाखण्डलस्य, गोपवेषस्य विष्णो: और सद्य:सीरोत्कषणसुरभि* की व्याख्या करो, सारा रहस्य अनावृत्त हो जाएगा।

प्रियंवदा : कैसे?

विद्योत्तमा : देखो! रामगिरि का सरोवर माता सीता के चरणों के प्रवेश से पवित्र होता है राम-लक्ष्मण के स्नान से नहीं। क्या यह कम महत्त्वपूर्ण है?

प्रियंवदा : राम-लक्ष्मण के रहते हुए भी मैथिली के चरण से पवित्र! ओह! यह महत्त्वपूर्ण तो अवश्य ही है।

विद्योत्तमा : गगन में उड़ते श्यामल बादल जब वहाँ सुशोभित सप्तवर्णी इन्द्रधनुष से टकराते हैं तो वह धनुष खंडित होता है और इस क्रीड़ा में एक समय ऐसी स्थिति बनती है जब श्यामल बादल पर खंडित इन्द्रधनुष ऐसे शोभता है मानो मोर मुकुट पहने श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे हों!

प्रियंवदा : विलक्षण उत्प्रेक्षा! किंतु इसमें मिथिला कहाँ?

विद्योत्तमा : अरे! धनुष तो मिथिला में ही खंडित हुआ था न! और तभी सीता का विवाह श्रीराम से हुआ था। कवि ने इसे ही अपना स्वर दिया है।

प्रियंवदा : यह तो सारा संसार जानता है।

विद्योत्तमा : संसार यह भी जानता है कि मिथिला में अनावृष्टि होने पर भारी अकाल पड़ा था। तब मिथिलेश राजा जनक ने स्वयं हल चलाया था और सिया सुकुमारी का जन्म हुआ। फिर भारी वर्षा हुई और अकाल समाप्त हुआ।

प्रियंवदा : यह सर्वविदित है।

विद्योत्तमा : पर यह सर्वविदित नहीं है कि *सद्यःसीरोत्कषणसुरभि* और सीता में क्या संबंध है।

प्रियंवदा : क्या संबंध है? मुझे भी नहीं पता। तुम्ही बताओ!

विद्योत्तमा : तुरंत जुते खेत से सुगंध उठती है। ऐसे सद्यः चासे-सेमारे खेत पर जब एक अछार वर्षा हो जाती है तब खेत से उठ रही सोंधी सुगंध दिव्य हो जाती है। यह *सद्यःसीरोत्कषणसुरभि* सिया सुकुमारी ही हैं जिनका विवाह धनुष के खंडित होने के बाद ही हुआ था।

प्रियंवदा : ओह अद्भुत! तुम्हारी विद्या सचमुच उत्तम है! इसीलिए तो तुम विद्योत्तमा हो!

विद्योत्तमा : काश! मैं इस कवि का नाम जान पाती!

प्रियंवदा : अरे रुको!

विद्योत्तमा : क्या हुआ?

प्रियंवदा : वह व्यापारी मुझे आज मंदिर में मिला था। अभी संभवतः यहीं होगा। मैं पूछकर आती हूँ।

विद्योत्तमा : **(जाती हुई प्रियंवदा से)** प्रियंवदे! यदि उस व्यापारी के पास उस कवि की कोई अन्य रचना की प्रतिलिपि हो तो अवश्य ले लेना।

चाहे जो भी मूल्य लगे! यह कवि पाठक के हृदय में सीधा उतर जाता है। एकदम अपना लगता है।

(प्रियंवदा चली जाती है। कुछ काल सन्नाटा रहता है फिर किवाड़ खटखटाने की आवाज आती है- ठक! ठक! विद्योत्तमा उधर देखती है पुनः किताब में डूब जाती है)

विद्योत्तमा : **(स्वगत)** आज सुबह से ही कौए कुचर रहे हैं। मेरी बायीँ आँख भी फड़क रही है। पता नहीं मेरे इस नीरस जीवन में आज यह शुभ संकेत क्यों हो रहा है!

(ठक-ठक की आवाज के साथ कालिदास का स्वर आता है- देवि! द्वार देहि! विद्योत्तमा चौंकती है।) अरे! यह स्वर तो कुछ जाना-पहचाना लग रहा है। किनका हो सकता है? **(ठक-ठक की आवाज के साथ पुनः वही स्वर आता है- देवि! द्वार देहि!)** विद्योत्तमा कानपर हाथ रखकर स्वर पहचानने का प्रयास करती है) अरे! यह तो मेरे स्वामी का स्वर लगता है। परिष्कृत वाणी में ऐसा सधा स्वर एक मूर्ख का कैसे हो सकता है! नहीं-नहीं! यह अवश्य मेरा भ्रम है। हे भगवती! मेरे इस भ्रम को साकार करो माँ! इस चिर विरहिन के जीवन में वसंत कभी आया ही नहीं। पतझड़ ही पतझड़ रहा! कृपा करो माँ! **(एकदम समीप से वही स्वर फिर अभरता है- देवि! द्वार देहि! मेज पर पुस्तक रखकर विद्योत्तमा खड़ी हो जाती है।)** निश्चय ही यह वही स्वर है। ओह! आज इस स्वर में क्या विशेषता है? अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः!

(सजे-धजे राजसी परिधान में कालिदास मंचपर आते हैं। विद्योत्तमा कुछ क्षण उन्हें अपलक निहारती है फिर सहसा क्षमा स्वामी! कहते हुए कालिदास के चरणों में झुकती है। कालिदास नेहपूर्वक उन्हें उठाकर छाती में सटा लेते हैं। कुछ क्षण दोनों की आँखों से अश्रुधारा बहती है।)

कालिदास : **(प्रकृतिस्थ होते हुए)** देवि! क्षमायाचना तो मैं कर रहा हूँ जो अपात्र रहकर भी छलपूर्वक आपसे विवाह कर बैठा। उस दिन छद्‌म विद्वत्ता थी, छल था और विश्वासघात था! पर आज? आज कोई छल नहीं! देवि! आप चाहें तो मेरा परीक्षण कर सकते हैं।

विद्योत्तमा : नहीं स्वामी! मैं पहले ही बहुत दंड भोग चुकी हूँ। **(सहसा कालिदास की नजर किताब पर पड़ती है। उठा लेते हैं।)**

कालिदास : **(साश्चर्य)** अरे! मेघदूतम्! यहाँ!

विद्योत्तमा : यह पुस्तक सचमुच अद्‌भुत है! आपने पढ़ी है क्या?

कालिदास : मैंने इसे पढ़ा नहीं देवि! मैंने इसे जिया है! इसका अक्षर-अक्षर मेरे हृदय की धड़कन है। इसका हर शब्द मेरे भावों का प्रकटन है। मैंने इसे रचा नहीं है। सच कहूँ तो इसी ने मुझे अबतक जीवित रखा है।

विद्योत्तमा : **(साश्चर्य)** अरे! आपकी रचना है!

कालिदास : परंतु यह यहाँ कैसे ?

विद्योत्तमा : उज्जैन से मिथिला होकर अंग-बंग आने-जाने वाले व्यापारी से प्रियंवदा प्रतिलिपि मँगाती है। इस प्रतिलिपि का मुखपृष्ठ फटा रहने के कारण रचनाकार का नाम पता नहीं था। अभी रचनाकार का नाम पता करने ही प्रियंवदा उस व्यापारी से मिलने गई है।

कालिदास : प्रियंवदा?

विद्योत्तमा : प्रियंवदा मेरी सखी है। आपके जाने के बाद उसने मेरे लिए अपना सबकुछ त्याग दिया।

कालिदास : वाह! प्रियंवदा चित्रगुप्त से मिलने गई है! भगवती प्रियंवदा को उसके त्याग का फल दे! चित्रगुप्त तो अभी मुझे मिला था।

विद्योत्तमा : क्या आप उन्हें जानते हैं?

कालिदास : हाँ! उज्जैन के सबसे बड़े व्यवसायी का पुत्र है। इनका रेशम का व्यवसाय पूरे भारत में है।

विद्योत्तमा : साहित्य का व्यवसाय?

कालिदास : नहीं-नहीं! यह उसका पार्श्व व्यवसाय है। आखिर उसी के कारण तो मेरी रचना वहाँ तक पहुँच गई जहाँ मेरा अभीष्ट था।

विद्योत्तमा : आपका अभीष्ट!

कालिदास : हाँ देवि मेरा अभीष्ट! मेघदूतम् काव्य जिसके कारण रचा गया उन तक यह रचना पहुँच जाय ऐसी इच्छा तो मेरे ह्रदय के कोने में अवश्य थी।

विद्योत्तमा : आप सचमुच अनुपम हैं महाकवि कालिदास! क्या कालिदास जैसे कवि के परीक्षण की आवश्यकता है?

कालिदास : अवश्य! आप एक बार धोखा खा चुकी हैं।

विद्योत्तमा : **(चरण में झुकती हुई)** कोई परीक्षण नहीं स्वामी! बस मुझे क्षमादान दें।

कालिदास : **(मुस्कराते हुए)** मैं आपको चाहकर भी क्षमादान नहीं दे सकता देवि! मैं विवश हूँ।

विद्योत्तमा : यह विवशता क्या है नाथ? मैंने क्षमायाचना की है फिर मुझे क्षमा क्यों नहीं मिल सकती आर्यश्रेष्ठ?

कालिदास : क्योंकि मेरे मित्र कुमारदास ने अपने तीन वचनों के प्रथम वचन से आपको आजन्म इस भुजपाश में रहने का दंड निर्धारित कर दिया है। **(विद्योत्तमा को अपने भुजपाश में लेते हैं)**

विद्योत्तमा : **(मुस्कराते हुए)** ये कुमारदास कौन हैं और ये तीन वचन क्या हैं स्वामी?

कालिदास : लंका के राजकुमार कुमार धातुसेना गुरुकुल में मेरे सहपाठी थे। उन्होंने मेरी कथा सुनकर मुझसे तीन वचन लिए।

विद्योत्तमा : **(साश्चर्य)** अच्छा! कौन-कौन सा वचन?

कालिदास : **(मजबूती से हाथ पकड़कर)** पहला आपको क्षमादान देकर ससम्मान अपने साथ रखूँ, दूसरा महाराज विक्रमादित्य के दरबार का रत्न बनने का प्रस्ताव स्वीकार करूँ और तीसरा यह कि मैं एक बार लंका की यात्रा करूँ। लंका से वापसी में मेरे साथ मिथिला आकर जनकपुरी और उच्चैठ भगवती का दर्शन करने का उन्होंने वचन भी दिया।

विद्योत्तमा : अनजान होकर भी जिन्होंने मेरे कष्टों का अनुमान कर हमारे मिलन का मार्ग प्रशस्त किया उस वीर कुमारदास को अपना ज्येष्ठ भ्राता मानकर मैं उन्हें सादर प्रणाम करती हूँ। **(दक्षिण दिशा में हाथ जोड़ती है)**

कालिदास : **(हँसकर)** मेरे मित्र से तो आपने भी अपना एक नूतन संबंध जोड़ लिया। वाह! विद्योत्तमे! संबंध का महत्त्व कदाचित् वे नहीं जान सकते जिन्हें ये सहजता से उपलब्ध होते हैं। मुझ जैसे लोग ही संबंध का महत्त्व समझते हैं।

विद्योत्तमा : आर्य!

कालिदास : हाँ विद्योत्तमे! मुझे तो अपने पिता का चेहरा भी स्मरण नहीं। सुना कि माताजी भी चल बसीं। मैं उन्हें कोई सुख नहीं दे सका। यह मुझे आजन्म कचोटता रहेगा। रिश्तों के नाम पर मात्र एक मित्र था और उसे भी आज आपने छीन लिया! **(हँसते हैं)**

विद्योत्तमा : मैं भी तो आपकी ही हूँ। जब मैं ही आपकी हूँ तो मेरा सबकुछ तो आपका ही है स्वामी!

कालिदास : हाँ प्रिये! मुझे तीसरे वचन को साकार करने के लिए एक बार लंका के माटरा नगर जाकर अपने मित्र कुमारदास से मिलना है।

विद्योत्तमा : **(साश्चर्य)** माटरा! सुना है वहाँ के हाथियों में गजमोती मिलते हैं।

कालिदास : हाँ प्रियतमे! पहले माटरा में अपने मित्र से मिल तो लूँ। वहाँ से आपके लिए गजमोती तो क्या गजमुक्ता हार भी लेता आऊँगा।

विद्योत्तमा : मैं अपने अग्रज के लिए अभिमंत्रित एक रक्षासूत्र भेजूँगी। आप उसे मेरे वीर की दाहिनी भुजा में बाँध देंगे।

कालिदास : अवश्य प्रियतमे!

(दूर से प्रियंवदा का हाँफता हुआ स्वर क्रमशः नजदीक आता है।)

प्रियंवदा : **(हाँफते हुए)** विद्योत्तमा! आज हमारे भाग्य खुल गए। मंगल गीत गाओ मेरी सखी! अरे आज घी के दिए जलाओ! हमारे पहुना ही महाकवि कालिदास हैं! मेघदूतम् उन्हीं की रचना है। वे आज ही तुमसे मिलने आने वाले हैं। उस व्यापारी ने मुझे यही कहा है। विद्योत्तमे! वर्षों से संतप्त आज मेरा मन भी नाच रहा है! द्वार सजाओ कि आज मेरे पहुना महाकवि कालिदास आ रहे हैं! **(हाँफते हुए मंचासीन होती है। विद्योत्तमा और कालिदास को संग देखकर ठिठक जाती है। कुछ पल बाद कालिदास को हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)** धन्य भाग्य जो पहुना पधारे! सखि! आप दोनों बात करें मैं जल और मधुर लेकर आती हूँ।

विद्योत्तमा : प्रियंवदे! **(आँखों से संकेत करते हुए प्रियंवदा निकल जाती है।)**

(यवनिका पात)

दृश्य- छः

(लंका का एक नगर माटरा। माटरा का एक घर। घर पर सिंह की आकृति बनी हुई है। दीप की रोशनी से घर सुशोभित है। कुछ भींगे कुछ सूखे राजकीय वस्त्र में कालिदास एक हाथ से द्वार खटखटाते हैं। उनके दूसरे हाथ में एक गठरी है। आकर्षक देहयष्टि पर सुन्दर परिधान में सजी-सँवरी सुंदरी सामने आती है।)

कामसेना : श्रीमन्! आप कौन?

कालिदास : देवि! भारतवर्ष से आया मैं एक पथिक कालिदास हूँ।

कामसेना : आने का प्रयोजन?

कालिदास : कल्याणी! सिंहल नरेश कुमार धातुसेना से सुबह दरबार में मिलना है। आज रात के लिए आपसे आश्रय की याचना है।

कामसेना : माटरा में आपका स्वागत है श्रीमन्! परिधान से आप कोई राजपुरुष लगते हैं। आपका स्वागत-सत्कार करते हुए मुझे खुशी होती परंतु आज मैं विवश हूँ। इस घर के तीन घर आगे एक राजकीय अतिथिशाला है। आप वहाँ रात्रि विश्राम कर सकते हैं। आज के लिए कृपया मुझे क्षमा करें।

कालिदास : सुभगे! मैं अतिथिशाला अवश्य देख लूँगा पर एक सुंदर स्त्री के कपोल पर विवशता या चिंता की लकीरें शोभा नहीं देतीं। देवि! आप कौन हैं और आपकी परेशानी क्या है?

कामसेना : मैं कामसेना! महाराज कुमारदास की राजनर्तकी हूँ। एक समस्यापूर्ति पर सोचने के लिए मुझे कुछ अवकाश चाहिए। इसके सर्वश्रेष्ठ समाधान पर दस सहस्र स्वर्णमुद्रा का पुरस्कार है। राजा की चहेती बने रहने के लिए इसमें मेरा जीतना जरूरी है।

कालिदास : वह समस्या क्या है देवि?

कामसेना : वह समस्या है- कमलः कमलोत्पत्ति श्रुयते न तु दृश्यते अर्थात् कमल से कमल की उत्पत्ति सुनी जाती है पर देखी नहीं जाती...

कालिदास : **(हठात्)** बाले तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्। हे स्त्री! तब तुम्हारे मुखकमल से ये दो नयनकमल कैसे उत्पन्न हो रहे हैं?

कामसेना : ओह! अपूर्व समाधान! अद्भुत!! विलक्षण!!!

कालिदास : सुंदरी! आपकी चिंता दूर हुई। अब कृपया मुझे अतिथिगृह तक छोड़ दें।

कामसेना : **(हाथ जोड़कर)** नहीं श्रीमन्! मुझे क्षमा करें कि भारतवर्ष के इस स्यमंतक मणि को मैं पहचान नहीं सकी। अन्दर पधारकर इस कुटिया को अपने चरणरज से पवित्र करें। मेरा आतिथ्य स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत करें आर्यश्रेष्ठ! आपके वस्त्र भी कुछ भींगे हुए लगते हैं।

कालिदास : हाँ देवि! आज मेरा माटरा प्रवास का प्रथम प्रहर अद्भुत रहा। ताम्रलिप्ति से महापोत में माटरा तक की यात्रा रोमांचक रही। माटरा सागर तट पर आज सूर्यास्त से कुछ पूर्व ही उतरा।

कामसेना : अब तो रात होने को आई। बहुत विलंब हो गया।

कालिदास : हाँ देवि! मैं सागर तट पर प्रकृति का अनुपम सौंदर्य निहार रहा था। भगवान् भास्कर मानो दिन भर ताप बाँटते-बाँटते इतने तप गए कि स्वयं शीतल होने के लिए समुद्र में समाने लगे। सम्पूर्ण क्षेत्र सिन्दूरी शोभा से सुशोभित था। लगता था मानो लंका का सारा स्वर्ण भंडार समुद्र की सतह पर आकर स्वर्ण का सेतुबंध बना गया हो!

कामसेना : ओह! अति सुन्दर!!

कालिदास : धीरे-धीरे आधा सूर्य समुद्र में समा गया और आधा सतह पर रहा! लगता था मानो एक विशाल स्वर्ण परात उलट गया हो। प्रतीत हो रहा था मानो समुद्र पर भगवान् विश्वकर्मा ने अर्द्ध चन्द्राकार एक कनक भवन का निर्माण कर दिया हो!

कामसेना : ओह! अद्भुत!

कालिदास : मैं इस दृश्य का आनंद ले रहा था तभी वर्षा शुरू हो गई। वर्षा की बूँदें जब समुद्र की आरक्त सतह पर गिरतीं तो सतह से उठ रही लाल-लाल लघूर्मि मानो छोटे-छोटे स्वर्ण कलश से सूर्यदेव को अर्घ्य दिए जा रहे हों। स्वर्ण कलश बनना, अर्घ्य देकर फिर समुद्र में मिलना, फिर बनना! फिर मिटना! ओह! विलक्षण!!

कामसेना : ओह! अनुपम सूक्ष्म दृष्टि!!

कालिदास : दोनों तरफ अँधेरा और बीच में लाल सूर्य मानो वसुधा देवी की अनन्त केशराशि माँग के दोनों तरफ दो भागों में बँट गई हो और मध्य में सुहाग का सिन्दूर दमक रहा हो! मैं वर्षा में भींगता रहा पर दृष्टि हटा नहीं सका।

कामसेना : आपकी दृष्टि सूक्ष्मता की आग्रही है। आप सचमुच महान् हैं। आज आपने सेवा का अवसर देकर मुझे कृतार्थ किया है। आप पहले नहा-धोकर अपने वस्त्र बदल लें। स्नानागार उधर है श्रीमन्! **(एक ओर इशारा करती है)**

कालिदास : नहीं देवि! पहले मैं माटरा की इस अनुपम संध्या के अवसर पर समुद्र में समाते सूर्यदेव को देखकर उभरे अपने मनोभावों को लिपिबद्ध करूँगा। अभी इसकी अनुभूति का भाव सांद्र है। सटीक चित्रण हो सकेगा। फिर स्नानादि से निवृत्त होकर आपको सभी भाव सुनाऊँगा। आप जिसे सर्वश्रेष्ठ कहेंगी उसका परिष्कार कर अपनी आगामी रचना में स्थान दूँगा।

कामसेना : **(साश्चर्य)** मैं?

कालिदास : हाँ देवि! रचना का मूल भाव भले स्वान्तः सुखाय हो पर इसका मूल उद्देश्य पाठक हित ही रहता है! आप जैसी कामिनी मेरी इस रचना-प्रक्रिया में मेरी सहचरी बनेंगी यह मेरे लिए भी गौरव की बात है! **(एक कोने में भोजपत्र, लेखनी आदि देखकर)** अरे वाह! इस कोने में तो भोजपत्र, लेखनी, मोसि सबकुछ उपलब्ध है। क्या मैं यहाँ बैठ सकता हूँ?

कामसेना : अवश्य!

कालिदास : सुभगे! कल सुबह मुझे राज दरबार भी जाना है। मेरी भार्या विद्योत्तमा ने अपने भ्राता कुमारदास के लिए एक संपुट में अपना स्नेह भेजा है। वह भी महाराज को देना है।
(कामसेना सशंकित हो जाती है। कालिदास सामान रखकर वहीं बैठ जाते हैं। भोजपत्र, लेखनी आदि सँभालने लगते हैं। कामसेना बाउर कूचकर रहस्यमयी हँसी हँसती है।)

(यवनिका पात)

दृश्य- सात

(सिंहल राज दरबार का दृश्य। राज सिंहासन के ऊपर दीवाल में सिंह की आकृति सुशोभित है। कुमारदास राज सिंहासन पर विराजमान हैं। दोनों तरफ कुछ सभासद बैठे हुए हैं। सजी-धजी कामसेना का मादक नृत्य चल रहा है। आनंदोत्सव का माहौल है। सभी झूम रहे हैं। नृत्य समाप्त होते ही सभी वाह वाह! अद्‌भुत!! अति उत्तम!! का शोर करते हैं। कुमारदास हाथ उठाकर राजसभा की कार्यवाही शुरू करने का आदेश देते हैं।)

कामसेना : **(झुककर)** महाथोटा माटरा अधिपति कुमार धातुसेना की जय हो! **(सभी सभासद महाराज की जय-जयकार करते हैं)**

कुमारदास : विलक्षण! कामसेना! आज तो तुमने अपने नृत्य से रति को भी लज्जित कर दिया। आज से पहले तुम्हारा यह रूप देखने को नहीं मिला था। क्या बात है? आज तुम अत्यधिक प्रफुल्लित नजर आ रही हो!

कामसेना : महाराज की कृपा बनी रहे! महाराज! आपकी आज्ञा हो तो समस्यापूर्त्ति शुरू की जाय।

कुमारदास : क्या बात है? आज तुम समस्यापूर्त्ति के लिए अत्यंत अधीर हो!

कामसेना : **(सँभलते हुए)** आपकी प्रिया बनी रहने के लिए यह समस्यापूर्त्ति प्रतियोगिता जीतना मेरे लिए आवश्यक है महाराज!

(कुमारदास मुस्कुराते हुए समस्यापूर्त्ति प्रतियोगिता शुरू करने का संकेत करते हैं। सभी सभासद महाराज की जय-जयकार करते हैं।)

महामंत्री : **(उठते हुए)** महाराज की आज्ञा से समस्यापूर्त्ति शुरू होती है। सर्वप्रथम पिछली सभा में दी गई समस्या के सर्वश्रेष्ठ समाधान पर दस सहस्त्र स्वर्ण मुद्रा का पुरस्कार दिया जायगा। इसमें राजसभा के सम्मानित सदस्यों के साथ आमजन **(दर्शकों की तरफ मुखातिब होकर)** भी भाग ले सकते हैं। समस्यापूर्त्ति के बाद उपस्थित जन-समुदाय की समस्या एवं शिकायतों पर विचार होगा।

कामसेना : **(उतावली होकर)** फिर से आनंदोत्सव में मेरा नृत्य भी होगा।

महामंत्री : समस्यापूर्त्ति के विषय में आप सब जानते ही हैं। शर्त्तों को दुहराना समय का अपव्यय होगा। इसकी पहली पंक्ति है-
कमलः कमलोत्पत्ति श्रुयते न तु दृश्यते।
भाव है कि कमल से कमल की उत्पत्ति सुनी जाती है पर देखी नहीं जाती।

कामसेना : **(सहसा सम्मुख आकर)**
बाले तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्।
(सभासद सब जय-जयकार करते हैं)

कुमारदास : **(चौंकते हुए)** कामसेना! तुमने तो मुझे मित्र कालिदास का स्मरण करा दिया! वह इस संसार में साहित्य का मुकुटमणि हैं। उनके जैसा कोई नहीं। इस तरह की पंक्ति वही कह सकते हैं। अनुपम! अद्भुत!!

कामसेना : ओह! क्या कालिदास! आपके मित्र!! **(चौंकती है)**

कुमारदास : हाँ कामसेना! गुरुकुल में हम साथ पढ़ते थे! क्या तुम कालिदास से कभी मिली हो?

कामसेना : **(अस्थिर चित्त से)** नहीं महाराज! मैं इस सौभाग्य से वंचित हूँ। एक बार उन्हें यहाँ बुलाने की कृपा की जाय!

कुमारदास : हाँ कामसेना! उन्होंने मुझे वचन दिया था कि एक बार वे मुझसे मिलने माटरा अवश्य आयेंगे। पता है ? बचपन में वे अज्ञानी थे। विद्योत्तमा से शास्त्रार्थ में परास्त पंडितों ने छल से उनका विवाह महामूर्ख जान कालिदास से करा दिया। भेद खुलने पर कालिदास का भारी अपमान और तिरस्कार हुआ। वे पत्नी का परित्याग कर भाग गए फिर उच्चैठ भगवती की प्रेरणा और अपने अध्यवसाय से महाकवि बने।

महामंत्री : धन्य-धन्य हे उच्चैठ भगवती!

कुमारदास : सुना है मुझे वचन देने के बाद जब वो पहली बार विद्योत्तमा से मिले तो उनके मुँह से निकले तीन शब्दों- अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः से अपनी तीन रचनाओं की शुरूआत कर उनके शब्दों को त्रिवेणी-सा पावन बना दिया। अस्ति से अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः से कुमारसंभवम्, कश्चित् से कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः से मेघदूतम् और वागर्थविव सम्पृक्तो वागार्थः प्रतिपत्तयै से रघुवंशम् का आरम्भ कर महाकवि ने विद्योत्तमा को अनुपम मान दिया। इसके लिए महाकवि को अपनी रचनाओं में किंचित् परिमार्जन भी करना पड़ा।

महामंत्री : महाकवि कालिदास अनुपम हैं। विश्व के कवियों की गणना यदि कालिदास को इस कानी उँगली पर रखकर शुरू करते हैं तो इनके बाद किसी अन्य कवि का नाम ही नहीं आता अतः इस उँगली का नाम अनामिका सार्थक हुआ।

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

(कानी उँगली से गिनती आरंभ कर अनामिका उँगली दिखाते हैं।) अद्‌भुत!

कुमारदास : ऐसी अनेक सूक्तियाँ उनके विषय में प्रचलित हैं। सचमुच वे जीवित किंवदंतीपुरुष हो गए। न जाने वह दिन कब आएगा जब मेरे मित्र यहाँ पधारेंगे! **(सहसा चौंककर)** कामसेना! सच-सच बता तुमने महाकवि कालिदास को कभी देखा है?

कामसेना : **(सकपकाते हुए)** क्षमा महाराज! मैं पूर्व में ही कह चुकी हूँ कि मैं उनसे कभी नहीं मिली।

कुमारदास : तुमने जो समस्यापूर्त्ति की है उसे दोहराओ!

कामसेना : **(कंपित स्वर)**
बाले! तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्।

कुमारदास : **(कड़क स्वर)** तुमने अपने लिए 'बाले' शब्द का उपयोग कैसे किया? अपने लिए कैसे कहा कि तेरे मुखकमल से दो नयनकमल निकल रहे हैं? कालिदास को मित्र कहने पर भी तुम चौंक उठी थी। क्यों? **(कामसेना भयभीत होती है।)**

कामसेना : **(दुर्बल स्वर में)** महाराज!

कुमारदास : **(गुस्से में खड़े होकर म्यान से तलवार खींच कामसेना की गर्दन पर रखते हुए)** सच-सच बता अन्यथा अभी तेरी गर्दन धड़ से अलग करता हूँ!

कामसेना : **(हाथ जोड़कर)** क्षमा लंकेश! प्राणदान महाराज! सब सच-सच कहती हूँ प्राणेश्वर! मात्र प्राणदान दिया जाए। कल संध्याकाल राजसी परिधान में एक गौरांग दिव्य प्रौढ़....

कुमारदास : **(उत्तेजित होकर)** हाँ! वे महाराज विक्रमादित्य के दरबार के महारत्न हैं।

कामसेना : हाँ महाराज! उसी दिव्य पुरुष ने आकर कल रात्रि-विश्राम की याचना की। मैं प्रत्येक स्थिति में यह समस्यापूर्त्ति जीतना चाहती थी। मुझे सोचने के लिए एकान्त की आवश्यकता थी। मैंने आश्रय देने से इन्कार कर दिया।

महामंत्री : अतिथि सत्कार हमारा धर्म है कामसेना! आपने उचित नहीं किया।

कामसेना : क्षमा महामंत्री!

कुमारदास : **(अधीरता से)** फिर क्या हुआ?

कामसेना : आग्रहपूर्वक उन्होंने पहली पंक्ति पूछी। मेरे *कमलः कमलोत्पत्तिः श्रुयते न तु दृश्यते* कहते ही हठात् उनके मुँह से निकल गया- *बाले तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्*। मैं इस समस्यापूर्त्ति की रमणीयता पर रीझ गई। आदर सहित उनका सत्कार किया। मैं संसार की वह एकमात्र स्त्री हूँ जिसे उन्होंने अपनी सूक्ष्म सृजन-प्रक्रिया से साक्षात्कार कराया। परंतु....

कुमारदास : परंतु क्या?

कामसेना : परंतु मुझे लगा कि कालिदास भी समस्यापूर्त्ति में भाग लेने ही आए हैं। सुबह यदि वे सिंहल दरबार पहुँच जाते तो दस सहस्त्र स्वर्णमुद्राएँ उन्हें ही मिलतीं। मुझे लोभ हो गया। आपकी चहेती बने रहने एवं पुरस्कार जीतने के लोभवश मैंने दूध में विष देकर उनकी हत्या कर दी और घर में ही तड़हरा खोदकर गाड़ दिया। **(रोती हुई)** क्षमा महाराज!

कुमारदास : **(तलवार हटा कामसेना की गर्दन पकड़ धक्का देकर)** अरे पातकी! दस सहस्त्र स्वर्णमुद्रा के लोभ में तूने मेरे मित्र कालिदास की जान ले ली! महाकवि कालिदास के प्राण हर लिए!! मैं दस सहस्त्र क्या उस नरपुंगव के लिए तो लंका का सारा स्वर्ण भंडार तुम पर न्यौछावर कर देता।

कामसेना : क्षमा महाराज! मैं पापिनी हूँ! मैंने महापाप किया है। परंतु महाराज! यदि आप मुझे एक अवसर दें, मुझे क्षमादान दें तो मैं भारतवर्ष से आए एक अनमोल उपहार आपको देकर अपना प्रायश्चित कर सकती हूँ।

कुमारदास : अरे पातकी! तू यह क्या कह रही है?

कामसेना : **(मस्तक झुकाकर)** क्षमा महाराज! मृत्यु के बाद उनकी सामग्रियों में रेशमी दुपट्टा में सहेजकर रखे चित्रित कागज के एक संपुट में मुझे रक्षासूत्र मिला। इस संपुट पर 'अग्रज कुमारदास के लिए' लिखा है। कोने में प्रेषक के रूप में 'बहन विद्योत्तमा' अंकित है।

कुमारदास : **(विह्वल स्वर)** ओह! विद्योत्तमा भाभी ने मुझे अपना भ्राता कहा! मेरे लिए रक्षासूत्र भेजा! अरी पातकी! तूने तो मुझे कहीं का नहीं छोड़ा! तूने मेरे मित्र कालिदास की नहीं! तूने मेरी जान ली है, मेरी! तुमने पूरी लंकापुरी को कलंकित कर दिया। महामंत्री!

महामंत्री : आज्ञा महाराज!

कुमारदास : इस कलंकिनी को साथ लेकर इसके घर जाएँ और पूरे राजकीय सम्मान के साथ मेरे मित्र कालिदास का शव लाएँ। वह संपुट भी लाएँ जिसके विषय में यह कलंकिनी कह रही है। श्रेष्ठ चंदन की राजकीय चिता सजायी जाय। युवराज कित्तीसेना को तत्काल उपस्थित होने का संदेश दिया जाय।

महामंत्री : जो आज्ञा महाराज!
(महामंत्री और अन्य सभासद कामसेना को पकड़कर प्रस्थान करते हैं। मंच पर कुमारदास विचलित होकर इधर-उधर भटकते हैं। चारण उन्हें सँभालने का प्रयत्न करता है।)

कुमारदास : **(एकल विलाप की मुद्रा)** मित्र कालिदास! आपने अपना वचन निभा दिया। मेरे देश आए। मुझे क्षमा करना मित्र! अपने देश में मैं आपकी रक्षा नहीं कर सका। धिक्कार है मेरे राजा होने पर! ओह! एक बार गुरुकुल में अपने लिए अग्रज और बन्धु संबोधन सुन आप कैसे द्रवित हुए थे! मेरी अंकमालिका पर कैसे भाव-विह्वल हुए थे मित्र! मैं कितना अधम हूँ कि मैं आपको बचा नहीं सका! मेरे ही वचन के कारण भाभी विद्योत्तमा से आपका पुनर्मिलन हुआ और इस अनुपम जोड़ी को तोड़ने का महापाप भी मेरे ही माथे चढ़ा। हाय रे मेरा भाग्य! मैं किस मुँह से विद्योत्तमा के समक्ष जा सकूँगा! भाभी को उपहार में देने के लिए कबसे गजमोतियों से तैयार गजमुक्ता हार जुगाकर रखा था। ओह! अब यह गजमुक्ता हार कौन पहनेगा! सब व्यर्थ हो गया। मेरे देश पर महाकवि कालिदास और देवी विद्योत्तमा का ऋण चढ़ गया। हे अवलोकितेश्वर! इस महाऋण से मैं कैसे उऋण होऊँ?

(महामंत्री का प्रवेश)

महामंत्री : महाराज की जय हो! किरीन्दी नदी के मुहाने पर सर्वोच्च राजकीय सम्मान के साथ श्रीखंड चन्दन की चिता तैयार है। यह स्थान राजप्रासाद के समीप ही है। युवराज कित्तीसेना मुखाग्नि...

कुमारदास : नहीं-नही महामंत्री! मैं स्वयं अपने मित्र को विदा करूँगा। प्रजा द्वारा किए गए पाप का प्रायश्चित भी स्वयं राजा को ही करना चाहिए। मुझे वहाँ तक ले चलें।

महामंत्री : हाँ, चला जाय! **(संपुट देते हुए)** महाराज! यह महाकवि के सामान में मिला है। बहन विद्योत्तमा ने अपने अग्रज कुमारदास के लिए भेजा है!
(कुमारदास संपुट को माथे से लगाते हैं। मुख्य मंच की बायीं तरफ और उसके सामने लगा पर्दा उठता है।

कालिदास की चिता के चारों तरफ चार स्तम्भों पर रंग-बिरंगी लड़ियाँ, वंदनवार, फूल की मालाएँ सजी हैं। जलपात्र रखा है और अग्नि प्रज्ज्वलित है। भूमि पर रंगोली बनी है। सुसज्जित चिता के निकट कित्तीसेना एवं अन्य सभासद खड़े हैं। कुमारदास उधर जाते हैं। चारण उन्हें सहारा देता है। कुमारदास संपुट खोलते हैं और भाव विह्वल होते हैं :

देवी विद्योत्तमा ने मुझे अपना अग्रज कहा है। ओह! मेरी बहन! मैं राजा होकर भी तुम्हारे सुहाग की, अपने मित्र कालिदास की रक्षा नहीं कर सका। क्षमा करना बहन! इस रक्षासूत्र का उपयोग अब मेरे भाग्य में नहीं। यह पुत्र कित्तीसेना की रक्षा अवश्य करेगा।

(यह सब बड़बड़ाते हुए संपुट से निकले दुपट्टा को कंधे पर रखते हैं। कित्तीसेना को रक्षासूत्र बाँध देते हैं। कालिदास की चिता के समीप जाकर शव देखकर मित्र-मित्र कहते हुए दहाड़ें मारकर रोते हैं। चारण और महामंत्री सहारा देते हैं तब उठते हैं। अपना मुकुट उतारकर कित्तीसेना के हाथ में देते हैं। फिर ऊपर का परिधान उतार देते हैं जिसे चारण सँभाल लेता है। विद्योत्तमा द्वारा प्रेषित दुपट्टा पुनः ओढ़ लेते हैं। जलपात्र से हाथ में जल लेकर स्वयं को सिक्त करते हैं फिर उल्का हाथ में लेकर—

'ॐ देवाश्चाग्निमुखाः सर्वे कृतस्नपनं गतायुषमेनं दहन्तु'

मंत्र बुदबुदाते हुए चिता की परिक्रमा कर कालिदास को मुखाग्नि देते हैं। चिता धधक उठती है। कुमारदास पुत्र कित्तीसेना के समीप जाकर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं।)

कुमारदास : **(बड़बड़ाने की मुद्रा)** मित्र कालिदास! मैंने आपको वचन दिया था कि आपको लंका दर्शन कराकर वापसी में मिथिला दर्शन करने आपके साथ चलूँगा। आप भारतीय यदि वचन के पक्के हैं तो हम सिंहली भी वचन निर्वहन में प्राणों का मोह नहीं करते। आपको लंका से अकेले कैसे जाने दूँ मित्र! मैं वचन भंग नहीं कर सकता। मैं भी साथ ही चलूँगा।

(कुमारदास कित्तीसेना के हाथ से मुकुट लेकर उसे पहना देते हैं और अपने माथे के चन्दन से कित्तीसेना का राजतिलक कर चिता की ओर बढ़ते हैं।)

कुमारदास : मैं आ रहा हूँ मित्र। अनन्त पथ पर हमारा महाप्रयाण साथ-साथ होगा। इस अंतहीन यात्रा में कदाचित् मुझे मिथिलापुरी और उच्चैठ भगवती के दर्शन हो जाएँ। उस दिन मैं कृतार्थ होकर जीवन-मरण के चक्र से मुक्त हो जाऊँगा। मैं नहीं चाहता कि किसी भी देश का ऋण मेरे देश पर रहे। इस ऋण से मुक्ति के लिए, मित्र धर्म निर्वहन के लिए मैं साथ चलने को आ रहा हूँ मित्र! हमारा महाप्रयाण साथ-साथ होगा मित्र! मुझे क्षमा करना मेरे देश! अवलोकितेश्वर मेरे देश और कित्तीसेना का कल्याण करे।

(कुमारदास धधकती चिता में प्रवेश कर जाते हैं। सर्वत्र हाहाकार और कोलाहल पसर जाता है। कुछ क्षण बाद पाँच अलग-अलग स्त्रियों के स्वर में 'प्राणनाथ', 'स्वामी', 'लंकेश्वर', 'प्राणेश्वर' और 'हृदयेश्वर' शब्द की चीत्कार सुनाई देती है। करुण क्रंदन, 'हे महादेव', 'हे अवलोकितेश्वर' का आर्त्तनाद, चीत्कार, चीख-पुकार और कोलाहल की गूँज में मंच डूब जाता है।)

(यवनिका पात)

महाकवि कालिदास का मैथिलत्व और उनका महाप्रयाण

सुप्रसिद्ध विश्वकवि होमर ही इलिएड और ऑडिसी के प्रणेता हैं या उन जैसे कवियों की शृंखला ने इनकी रचना की, विलियम शेक्सपीयर ही उनके नाम से प्रचलित साहित्य के मूल रचयिता हैं या फ्रांसिस बेकन, क्रिस्टोफर मार्लोव या एडवर्ड डे मेरे आदि का साहित्य शेक्सपीयर के नाम से प्रचलित है। विश्व वाङ्मय की अनेक ऐसी गुत्थियां हैं जो अभी भी सुलझ नहीं सकी हैं। ऐसी ही एक गुत्थी है महाकवि कालिदास का जन्मस्थान एवं उनका समय।

यह सत्य है कि महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में न तो अपने जन्मस्थान का विवरण दिया और न अपने आश्रयदाता का नाम ही लिया है। यह भी सत्य है कि उनकी रचनाओं का लालित्य, वर्णन की सूक्ष्मता, अर्थ गौरव, अलंकारों की घटा, रस-गुण-धर्म की छटा और काव्य-सौष्ठव का प्रकर्ष ऐसा पटा पड़ा है कि उनका हृदयस्पर्शी सूक्ष्म वर्णन प्रत्येक पाठक को 'अपना' ही लगता है। यही कारण है कि भारतवर्ष के अनेक क्षेत्र के विद्वानों ने अपने यहाँ ही कालिदास के जन्मस्थल होने का दावा किया है। मुख्य रूप से विदर्भ (के. कृष्णमूर्त्ति : कालिदास, साहित्य अकादेमी, दिल्ली, पृष्ठ 21), गढ़वाल का देवगिरि (डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित : कालिदास का वागर्थ, कालिदास अकादेमी, उज्जैन, पृष्ठ 144), क्रौञ्चरन्ध्र के आधार पर रुद्रप्रयाग का कविल्ठा (राजेन्द्र मिश्र : कालिदास और उनका युग, पृष्ठ 102); केसर, सूर्यपूजा और प्रत्यभिज्ञान दर्शन के कारण कश्मीर (प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला : The Birthplace of Kalidas, 2000, दिल्ली, पृष्ठ 67-68), भगवती काली की कृपा और धान के पौधों को उखाड़कर दूसरे खेत में खाउर (रोपने) करने जैसे वर्णन के आधार पर प. बंगाल के मुर्शिदाबाद जिला

का गढ़सिंगरू ग्राम (वी वी मिरासी : कालिदास, 1956, बंबई, पृष्ठ 53-54), नेपाल (मुरलीधर भट्टरई : Nepal, The Birthplace of Kalidas, ISBN 9781176867949), उज्जैन (पं. मोरेश्वर नीलकंठ शास्त्री : नवप्रभातम्, कानपुर, अंक 219 एवं अन्य विद्वान्) तथा मिथिला सहित अन्य क्षेत्रों के अपने-अपने दावे हैं। महाकवि कालिदास के जन्मस्थान संबंधी दावों की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत है।

विदर्भ के संदर्भ में अज द्वारा ससैन्य नर्मदा नदी पार कर विदर्भ की राजधानी आने– प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम् (रघु. 5/21), मालविकाग्निमित्रम् में विदर्भराज और विदिशाराज अग्निमित्र में वैमनस्य, कृष्ण द्वारा विदर्भराज की पुत्री रुक्मिणी का हरण आदि जैसी सामान्य बातें वर्णित हैं। इसमें कवि का कोई विशेष मात्सर्य भाव या अतिरिक्त विशिष्टता वर्णित नहीं है जिसे महाकवि के जन्मस्थान का संकेत माना जाय। गढ़वाल का देवगिरि, रुद्रप्रयाग का कविल्ठा या कश्मीर जैसे शीतल क्षेत्र के वासियों के लिए गर्मी से निजात पाने हेतु धारागृह में फव्वारों (यन्त्रधारागृहत्वम् ..., पूर्वमेघ, 65) या इससे शीतल हुए समीर (स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन..., उत्तरमेघ, 40) की कल्पना करना कुछ कठिन तो अवश्य है। यह पूर्णतया संभव है कि महाकवि ने क्रौञ्चरन्ध्र होते हुए हंसों को मानसरोवर जाते देखा होगा। कश्मीर के केसर की क्यारी और सूर्यपूजा भी देखी होगी। तथापि इनके आधार पर महाकवि को यहाँ का मूल निवासी कहना उचित नहीं होगा। केसर का वर्णन या सूर्यपूजा या प्रत्यभिज्ञा दर्शन के कारण महाकवि को कश्मीरी नहीं माना जा सकता। केसर की खेती में कोई सूक्ष्म बात या किसी विशेष प्रविधि की चर्चा नहीं हुई है जबकि धान की खेती में धान के बीज से जन्मे छोटे पौधों (बिच्चनि) को उस खेत से उखाड़कर दूसरे खेत में रोपने (खाउर करने) की चर्चा है- फलै:संवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः (रघु. 4/37)। बंगाली विद्वान् इस आधार पर भी महाकवि को बंगाली प्रमाणित करने में लगे रहे। जबकि अनादि काल से मिथिला में धनखेती में 'खाउर' प्रचलित रहा है। खाउर और उत्खात् शब्द में किंचित् ध्वन्यात्मक समता भी है। भगवती काली की कृपा और धनखेतों में कमल खिलना मिथिला में आज भी प्रसिद्ध है। उच्चैठ (मधुबनी) भगवती की कृपा से मूर्ख का विद्वान् बनने की कथा से भला कौन परिचित नहीं है? इसी तरह 'आषाढ़स्य प्रथमे दिवसे' जैसी महाकवि की पंक्ति के आधार पर यह दावा कि बंगाली कवि कालिदास ने बंगाल में प्राचीन काल से अद्यतन प्रचलित परम्परा के कारण ही दिन की गणना में पक्ष और तिथि का प्रयोग नहीं किया है, सत्य नहीं

है। गुप्त नृपति चन्द्रगुप्त द्वितीय के सेनापति आम्रकार्दव का साँची शिलालेख में 'सम्वत् 93 भाद्रपक्ष दि. 4' और कुमारगुप्त के कालमे मनकुवार स्थान से प्राप्त मूर्त्तिपर अंकित 'सम्वत् 129 ज्येष्ठ मास दि.18' से यह दावा खंडित होता है। यदि महाकवि बंगाली रहते तब कदाचित् रघु के हाथों बंगाली राजाओं की ऐसी भयंकर पराजय (रघु. 4/36) का उल्लेख नहीं होता। कश्मीर में सूर्यपूजा के आधार पर कश्मीरी कालिदास को अपना मानते हैं जबकि सूर्यपूजा का विशिष्ट रूप छठ अभी भी मिथिला में महाव्रत माना जाता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन और इन्दुमती के स्वयंवर में उनकी जगह सुनन्दा द्वारा अज को वरमाला पहनाने से महाकवि का कश्मीरी होने का उद्घोष नहीं होता। सुनन्दा द्वारा अज को माला पहनाना मात्र उनके चयन का द्योतक है। विवाह बाद में विधिपूर्वक होता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन की पताका फहराने के कारण यदि महाकवि कालिदास को कश्मीरी माना जाय तो 'कामायनी' के प्रणेता जयशंकर प्रसादजी को भी कश्मीरी कहना पड़ेगा! यह उचित होगा क्या? कश्मीर का यह शैव दर्शन (प्रत्यभिज्ञा दर्शन) अद्वैत दर्शन का ही एक प्रकार है ठीक वैसा ही जैसा मिथिला का भावाद्वैत दर्शन। विक्रमोर्वशीयम् के प्रथम पद में ही वेदान्त, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, भावाद्वैत, सांख्य, योग और भक्ति दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है—

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषय: शब्दो यथार्थाक्षर:।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणु:स्थिरभक्तियोगसुलभो नि:श्रेयसायाऽस्तु व:॥

महाकवि कालिदास परमात्मा का स्वतंत्र और आनन्दमय स्वरूप को मानते हुए भी परमात्मा के अवतारी रूप को भी स्वीकार करते हैं। राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार कहते हैं– रामाभिधानो हरिरित्युवाच (रघु. 13/1), कार्यान्तरमानुषस्य विष्णो: (रघु. 16/82), गोपवेशस्य विष्णो: (पूर्वमेघ, 15) आदि। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कल्हण ने कश्मीरी प्रतिभाओं की चर्चा में महाकवि कालिदास का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य कश्मीर के दावे को कमजोर करता है।

उज्जैनवासी स्वाभाविक रूप से महाकवि को 'अपना' मानते हैं। महाकवि की रचनाओं में उज्जैन का मार्मिक एवं विस्तृत वर्णन भी हुआ है। मुझे इसका मूल

कारण उज्जैन का महाकवि की जन्मभूमि नहीं अपितु कर्मभूमि होना लगता है। इन्दुमती के स्वयंवर में महाकवि प्रथम स्थान पर मगध नरेश परंतप और दूसरे स्थान पर अंगराज का वर्णन करते हैं। वर्तमान बिहार के इन दो क्षेत्रों के बाद अवन्तिराज को तीसरे स्थान पर रखते हैं। यह अपने क्षेत्र के राजा के प्रति अतिरिक्त आदर का प्रकटन है। महाकवि ने बिहार के सोनपुर का अत्यंत गरिमापूर्ण चित्र उकेरा है (रघु. 7/36, 8/95)। मगधनरेश परंतप के विषय में यही उद्गार है कि जैसे असंख्य तारों, ग्रहों और नक्षत्रों के रहने के बाद भी रात तभी ज्योतित होती है जब चन्द्रमा पूर्णता में शोभायमान हो। उसी तरह सहस्राधिक राजाओं के रहते हुए भी पृथ्वी मात्र मगधराज के ही कारण राजायुक्त कहाती है–

कामं नृपा: सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।
नक्षत्रताराग्रहसङ्कुलाऽपि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रि:॥

(रघु. 6/22)

यह प्रसंग अपने क्षेत्र के राजा मगधराज परंतप के लिए स्वाभाविक अतिरिक्त मात्सर्य का प्रकटन है जो परोक्ष रूप से महाकवि के जन्मस्थान का संकेत करता है। उज्जैन की वारांगनाओं का महाकाल मन्दिर में नृत्य और नखक्षत पर पड़ते शीतल फुहार से सुख मिलने पर दीर्घ कनखी मारने का बिम्ब (पूर्वमेघ 39) हो या अभिसारिकाओं को अंधकार में अपनी चमक से मार्ग दिखाने का चित्रण (पूर्वमेघ 41) हो, पण्य स्त्री संग संभोगमे रसिकजन द्वारा प्रयुक्त सुगन्धित पदार्थों की गुफा से आती महक (पूर्वमेघ 27) की चर्चा हो या परायी स्त्री संग रात व्यतीत कर तड़के गृह लौटे पति द्वारा नोर बहाती रूठी पत्नी के मनुहार में अश्रु पोंछने का चित्र (पूर्वमेघ 43) हो, ये सभी चित्र स्पष्ट रूप से वर्जना करैत हैं कि उज्जैन महाकवि कालिदास की जन्मभूमि हो सकती है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि लोग यथासाध्य अपने ग्राम की गुप्तकथाओं का प्रकटन अन्यत्र नहीं करते हैं और यहाँ तो महाकवि ने बहुत कुछ अनावृत्त कर इसका रसास्वादन किया है। उज्जैन की गढ़कालिका भगवती महाकवि कालिदास पूजित अवश्य है पर इस मंदिर से या इसमें लगे शिलालेख में वर्णित बारह पापनाशिनी स्थलों में से किसी स्थल संग किसी मूर्ख को महाकवि बनाने की कोई कथा अनुस्यूत नहीं है। इसके साथ ही यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि इस मंदिर के पुजारी परम्परागत रूप से मैथिल

होते हैं और पूजन परम्परा का विधान भी मैथिल पूजन पद्धति पर ही आश्रित है। इससे यह दृढ़ धारणा बनती है कि मैथिल महाकवि कालिदास जब अपने कर्मक्षेत्र मन्दसौर-उज्जैन (मालवा क्षेत्र) आए तब उन्होंने अपनी परम्परानुसार गढ़कालिका भगवती का पूजन किया। यही परम्परा अभी भी अक्षुण्ण है। यह तथ्यात्मक है कि उज्जैन ने कालिदास को कालिदासत्व दिया, गरिमा दी। भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन में जो स्थान माता यशोदा का है वही स्थान कालिदास के जीवन में मालव क्षेत्र उज्जैन का है। इसके साथ यह भी सत्य है कि जैसे देवकी ही श्रीकृष्ण की जन्मदायिनी माता हैं उसी प्रकार महाकवि कालिदास की जन्मदात्री मिथिला ही है।

अन्य क्षेत्रों के दावे उतने सशक्त नहीं हैं कि उनकी स्वतंत्र समीक्षा आवश्यक हो, अत: आगे मिथिला के दावों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

i) सीता का चरित्र-चित्रण के आधार पर– रघुवंशम् में जो सीता का चरित्र उभरा है वह महाकवि के मैथिलत्व का स्पष्ट संकेत है। इसमें ऋतुस्नान के बाद सुदक्षिणा को देखकर दिलीप का तुरंत संभोग करने की इच्छा (रघु. 1/76), मथुरानरेश सुषेण के जलविहार में रानी के अनावृत स्तन पर लगे चन्दन का यमुना जल में मिलने से मथुरा में ही गंगा-यमुना के संगम का दृश्य (रघु. 6/48) उपस्थित होना और कुश का रानियों के संग जलविहार का मांसल वर्णन है। अग्निवर्ण का केलि-वर्णन तो अत्यंत उत्कट है। वे नर्तकी, दासी और सेवकों की स्त्रियों के संग संभोग करते हैं (रघु. 21/32, 45)। रघुवंशम् में राम-सीता केलि-वर्णन विषयक मात्र दो पद (14/ 24-25) हैं। दोनों इच्छानुसार उस घर में भोग करते हैं जिसमें वनवास कालीन चित्र टँगे हुए हैं। वर्णन में कहीं कोई मांसलता नहीं है। इससे सीता के प्रति महाकवि का अतिरिक्त आदर और सम्मान प्रकट होता है। अपनी बहन-बेटियों का उत्कट केलि-वर्णन करना भला कौन कवि चाहेगा? कालिदास ने सर्वत्र सीता के शील की मर्यादा रखी है।

सीता परित्याग प्रसंग में महाकवि का मैथिलत्व स्पष्ट रूप से सामने आता है। अपने परित्याग की बात जान सीता विह्वल होती है, कुररी की तरह रोती है। इस चित्रण में 'हमर अभाग हुनक नहि दोष' का भाव अवश्य है तथापि सीता का रघुकुल पर प्रश्न उठाना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह लक्ष्मण से पूछती है कि जब राम ने अपने समक्ष मुझे अग्निपरीक्षा में पवित्र पाया तब मात्र लोकापवाद सुनकर अपयश के भय से मेरा परित्याग कर दिया। यह कृत्य क्या रघुकुल की कीर्त्ति के अनुरूप है?

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासी: श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥

(रघु. 14/61)

राम के विराट् व्यक्तित्व पर, रघुकुल पर प्रश्नचिह्न खड़ा करने का यह साहस अपूर्व है। आगे नि:सहाय व निराश सीता को महर्षि वाल्मीकि पुत्री संबोधन से पिता के घर आने की बात कहकर संबल देते हैं–

जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा।
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदेहि! पितुर्निकेतम्॥

(रघु. 14/72)

वह राम के चरित्र की प्रशंसा करने के बाद भी यह कहने से संकोच नहीं करते हैं कि राम ने जो उनके साथ अनुचित व्यवहार किया है इसके लिए उनपर मुझे भारी क्रोध आ रहा है (रघु. 14/73)। सीता के लिए विशेष मात्सर्य महाकवि के मैथिलत्व का स्पष्ट संकेत है।

ii) प्रकृति-वर्णन के आधार पर– महाकवि के प्रकृति-वर्णन में अनेक ऐसे बिम्ब हैं जो उनके मैथिलत्व को रूपायित करते हैं। विस्तार भय से मात्र एक प्रसंग प्रस्तुत है।

महाकवि मेघदूतम् के प्रथम श्लोक में 'जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु' कहकर सीता की वन्दना करते हैं। इसमें जनकतनया के चरण से सरोवर का जल पवित्र हुआ है, राम-लक्ष्मण के चरण से नहीं। यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आगे श्लोक 15-16 में जब गगन में तैरते श्यामवर्णी बादल आकाश में सुशोभित सप्तवर्णी इन्द्रधनुष से टकराते हैं तब इन्द्रधनुष खंडित प्रतीत होता है। लगातार तैरते बादल का इन्द्रधनुष से टकराने की इस क्रिया में एक समय ऐसा आता है जब लगता है कि मोरपंख मस्तक में सजाकर साक्षात् श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे हैं। विलक्षण उत्प्रेक्षा के इस अद्भुत चित्र में 'धनु:खण्डमाखण्डलस्य' से महाकवि अपनी मातृभूमि मिथिला का ही संकेत करते हैं।

सम्पूर्ण संसार जानता है कि श्रीराम द्वारा धनुर्भंग के बाद ही सीताजी से उनका विवाह हुआ था। अब अगले श्लोक का 'सद्य:सीरोत्कषणसुरभि' पदखंड पर विचार

किया जाय। इससे महाकवि का अपनी मातृभूमि के लिए मात्सर्य प्रकटन का अनुपम चातुर्य का पता चलता है। हमसब जानते हैं कि सद्यः चासे-सेमारे (हाल में जुती हुई) खेत से एक अलग सुगंध आती है। यदि इसपर एक अछार मेघ बरस जाय तब यह सौंधी सुगंध दिव्य हो जाती है। महाकवि जो मेघ से सद्य:जुते खेत पर एक अछार बरसने का आह्वान करते हैं इसमें उनका आशय उस क्रिया को पूर्णता देना है जिसमें अकाल समाप्त करने के लिए राजा जनक स्वयं हलधर बनकर हल चलाते हैं और सिया सुकुमारी प्रकट होती है। इसके बाद भारी वर्षा हुई और अकाल समाप्त हुआ। यहाँ सद्य:सीरोत्कषणसुरभि साक्षात् सिया सुकुमारी ही हैं। मेघदूतम् के मनन से अनेक प्रच्छन्न और विशिष्ट भाव उद्‌घाटित होते हैं तभी तो 'मेघे माघे गतं वयः' कहा गया है।

iii) रीति-रिवाज/पर्व-त्यौहार के वर्णन के आधार पर- महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित रीति-रिवाजों एवं पर्व-त्यौहारों पर मैथिल संस्कृति की स्पष्ट छाप है। महाकवि ने मिथिला की प्राचीन मत्स्य ध्वजा को गगन में फहराते दिखाकर मिथिला को मान दिया है- मत्स्य ध्वजा वायुवशाद्विदीर्णै (रघु. 7/40)। आज भी राज दरभंगा की निशानी यह मत्स्य ध्वजा ही है। महाकवि का मन यत्र-तत्र राजर्षि जनक को मैथिल और जानकी को मैथिली कहने में अधिक रमा है। भूमि नीपकर भट्‌ठा से शिशु का अक्षरारम्भ (रघु. 18/46), पतिगृह जाते समय जलाशय तक अरिआतना/ भ्रातारूप में शाङ्‌र्गरव एवं लोकनी रूप में गौतमी का जाना (अभि. शाकु.), धान के लावा से हवन, होमधूप को सूँघना, दुर्वाक्षत से आशीर्वाद, ध्रुवतारा का दर्शन, नव दम्पति का चतुर्थी तक भूमिपर शयन (कु.सं. 7/80, 81, 88, 94), वेदी के धुआँ से लाल हुई आँखें (रघु.13/28), पलवल से निकलते सूअर एवं साँढ़ों के पंकमय सींग (रघु.3/24), गुप्तमणि वा गूढ़मणि बालक्रीड़ा की चर्चा (उत्तरमेघ 6), महावराह क्षेत्र का चाक्षुष वर्णन (कु.सं. 8/20), देवोत्थान एकादशी (उत्तरमेघ 47), हथेली पर मिट्‌टी का महादेव बनाकर पूजा करना(कु.सं. 5/ 58), द्वारपर शंख-कमल के चित्र (उत्तरमेघ 20) से घर का पता देना आदि मैथिल परम्परागत चित्र हैं। आज भी ऐसे चित्र मिथिला में मिलते हैं। यह संभव है कि इन चित्रों में से कुछ चित्र अन्य क्षेत्रों में भी प्रचलित हों। आगे जिन चित्रों पर रोशनी दी जा रही है वे मात्र मिथिला में ही संभव हैं। कुमार संभवम् में विवाह से पूर्व पार्वती से माता मेना कुलदेवता को प्रणाम कराकर श्रेष्ठों का चरणस्पर्श कराती हैं (कु.सं. 7/27)। मिथिला में यह चित्र अभी भी आम है। यहाँ विवाह की रात जाँट गुहने (केश

विन्यास) के बाद कुमारी बेटी का मुँह देखना और बेटी द्वारा श्रेष्ठों का चरणस्पर्श करने की प्रथा आज भी प्रचलित है। अभी भी मिथिला के कोहवर घर में चतुर्थी तक भूमि पर शैय्या और नगहर में जल रखा जाता है। महाकवि ने इसका वर्णन किया है–

कनककलशयुक्तं भक्तिशोभासनाथं क्षितिविरचितशय्यं कौतुकागारमागात्
(कु.सं. 7/94)।

चतुर्थी दिन हल के पालो पर बैठाकर वर-वधू को नगहर में रखे जल से स्नान कराया जाता है और कोहवर घर में पलंग पर शैय्या दी जाती है। मिथिला में विवाह के बाद वधू बाराती के साथ ससुराल नहीं लौटती। अन्यत्र वधू बाराती के साथ ही ससुराल लौट जाती हैं। कुमार संभवम् में महादेव विवाह के बाद मास दिन तक ससुराल ही रहते हैं (कु.सं. 8/20)। एक और बात महत्त्वपूर्ण है कि महादेव-पार्वती विवाह में मात्र तीन बार वेदी की प्रदक्षिणा करते हैं (8/80)। यह मात्र मिथिला में ही प्रचलित है। अन्यत्र सात फेरों की सप्तपदी में सात वचन लेने की प्रथा प्रचलित है। ये तथ्य महाकवि कालिदास के मैथिलत्व का स्पष्ट उद्घोष करते हैं।

iv) भाषा वैज्ञानिक आधार पर– विक्रमोर्वशीयम् की भाषा महाकवि कालिदास की मातृभाषा और उनके मैथिलत्व का निर्णायक जयघोष करती है। इसमें विशुद्ध अपभ्रंश के 14 पद और प्राकृत-अपभ्रंश मिश्रित 16 पद हैं। इन पदों में सर्वत्र 'क्ष' का 'क्ख' में विकास, 'ए' और 'ओ' का ह्रस्व उच्चारण, करण कारक में निरनुनासिक 'ए' विभक्ति, संबंध परसर्ग 'क' एवं लोकगीत के टेक रूप में अद्यतन मिथिला में प्रयुक्त 'ओ', 'यौ', 'रे', 'ए', 'हो' आदि का प्रयोग हुआ है। यह भाषा वैज्ञानिक आधार पर विक्रमोर्वशीयम् के चौथे सर्ग के इन 30 पदों को सहजता से पूर्वी अपभ्रंश (मिथिलापभ्रंश) प्रमाणित करता है। महाकवि की रचनाओं में मिथिलापभ्रंश के स्रोत विद्यमान हैं जो महाकवि के मैथिलत्व का स्पष्ट उद्घोष है। भाषा वैज्ञानिक आधार पर महाकवि कालिदास के मैथिलत्व निर्धारण के लिए डॉ. रामचन्द्र ठाकुर की पुस्तक 'मिथिलापभ्रंश के आकर स्रोत' एवं प्रस्तुत लेखक की 'हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में मिथिला का योगदान' जैसी पुस्तकें देखी जा सकती हैं।

v) राजस्व अभिलेखों के आधार पर– मिथिला में साबिक सर्वे 1896 ई. में हुआ था और 1904 ई. में सर्वे खतियान तैयार हुआ था। इसमें मौजे– उच्चैठ, थाना नंबर– 89, थाना-बेनीपट्टी, जिला- दरभंगा (संप्रति जिला मधुबनी) में कालिदास डीह की भूमि का वर्णन निम्न प्रकार अंकित है–

मौजे- उच्चैठ, थाना नं. 89, थाना- बेनीपट्टी, जिला- दरभंगा

खाता	*खेसरा*	*रकबा*
231	*883*	*1-9-2*
	885	*1-3-17*
192	*880*	*1-0-8*

राजस्व अभिलेख कैफ़ियत में अंकित है— कालिदास डीह।
हाल सर्वे खतियान में यह प्रविष्टि निम्न प्रकार है—

खाता	*खेसरा*	*रकबा*
494	*2138*	*12 डिस्मिल*
	2139	*26 डिस्मिल*

महाकवि कालिदास समिति स्थान-उच्चैठ

खाता	*खेसरा*	*रकबा*
497	*2137*	*1 एकड़ 1 डिस्मिल*

अनाबाद बिहार सरकार गढ़ कालिदास डीह।

उच्चैठ अवस्थित कालिदास डीह का यह राजस्व अभिलेख महाकवि के मैथिलत्व पर निर्णायक सरकारी मुहर लगाता है। इस डीह की मिट्टी से अभी भी इलाके के बच्चों का अक्षरारम्भ महाकवि कालिदास की कृपा की कामना से ही लोग कराते है।

यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि मिथिला में महाकवि की रचनाओं की टीका/ व्याख्या और प्रतिलिपि की एक सुदीर्घ परम्परा रही है।1385 ई. से पूर्व म.म. दिवाकर कृत मेघदूत द्योतिका व्याख्या रची गई। मैथिल टीकाकारों में जगद्धर, जनार्दन, दिनकर मिश्र, भगीरथ मिश्र, मकरन्द मिश्र, रविकर, राम उपाध्याय आदि प्रसिद्ध हुए।

आधुनिक काल में भी यह क्रम जारी रहा है। ऐसे कुछ ग्रंथों में महाकवि पोद्दार रामावतार 'अरुण'जी का प्रबंधकाव्य 'कालिदास' मुख्य है जिसका लोकार्पण प्रथम अखिल भारतीय कालिदास समारोह, समस्तीपुर में दरभंगा राजबहादुर विश्वेश्वर सिंह, नरहन के दीवानबहादुर कामेश्वर नारायण सिंह, आयुक्त श्रीधर वासुदेव सोहोणी एवं स्वयं अरुणजी ने 10 फरवरी 1956 को किया था। फिर अरुणजी की 'कालिदास की आत्मकथा' आई। अस्सी के दशक में मार्कण्डेय प्रवासीजी का 'हम कालिदास' मिथिला-मिहिर में धारावाहिक रूप में छपा। पं. लक्ष्मण झा का 'महाकवि कालिदास : कहाँ और कब?' (विद्या मंदिर, अड़रिया संग्राम, मधुबनी, 1998) एवं Kalidas : A Heritage of Mithila, कृष्णानंद कृत 'कालिदास बिहार के थे', पं. दिगम्बर झा का दीर्घकाय ग्रंथ 'मिथिला एवं कालिदास' (कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, 2009), श्रीमती मधु झा की 'कालिदास : एक अनकही कथा' (ISBN 9789387456686, 2019), डॉ. रंगनाथ दिवाकर कृत 'महाकविक महाप्रयाण' (ISBN 9789391371128, 2022) प्रभृति ग्रंथों का मूल स्वर महाकवि कालिदास का मैथिलत्व ही है। महाकवि के मैथिलत्व को पं. जीवनाथ झा ने 1962 ई. में ही स्वर दिया था। पं. जयमन्त मिश्र (प्रबन्ध कुसुमाञ्जलि– किं कालदासो मिथिलावासी), पं. आद्याचरण झा, डॉ. आदित्यनाथ झा, पं. बलदेव मिश्र (विक्रम पत्रिका कालिदास विशेषांक और श्री राम चरित्र अभिनंदन ग्रंथ में संकलित आलेख– संस्कृत साहित्य में मैथिल विद्वानों का कृतित्व), डॉ. देव नारायण झा (संस्कृत सुकवि समीक्षा, मनीष प्रकाशन, वाराणसी-5), पं. शशिनाथ झा, डॉ. संजीत कुमार झा 'सरस' (कालिदास महोत्सव, 2024, उज्जैन, में पठित कविता 'दासः कवि मैथिलः') प्रभृति विद्वानों ने महाकवि कालिदास के मैथिलत्व को पल्लवित-पुष्पित किया है। मैथिलों के मन में महाकवि के लिए मधुर मात्सर्य का ही प्रतिफल है कि प्रस्तुत लेखक की कृति 'महाकविक महाप्रयाण' पर 18 लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के समीक्षात्मक आलेखों का संकलन 'अभिज्ञान महाप्रयाण' (ISBN 9789391371609, 2024) साहित्य अकादेमी युवा पुरस्कार से सम्मानित कवि श्री दीप नारायण के संपादन में प्रकाशित हुआ। किसी एक पुस्तक की 18 समीक्षाओं का यह प्रथम संकलन ही है। इसी तरह श्रीमती भावना मिश्र (संस्थापिका हैप्पी फार यू) के संपादन में 44 ख्यातिलब्ध कवियों की कालिदास विषयक कविताओं का साझा संकलन 'कालिदास' (ISBN 9788196605087, 2024) छपा है। सभी रचनाओं का मूल स्वर महाकवि कालिदास का मैथिलत्व ही है। मैथिली में इस तरह की यह पहली पुस्तक है। मेरा अभिप्राय है कि महाकवि मिथिला के कण-कण में

रचे-बसे हैं। अब तो वर्ष 2019 से उच्चैठ में राजकीय उच्चैठ-कालिदास महोत्सव भी प्रतिवर्ष आयोजित हो रहा है।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि महाकवि कालिदास जन्मना मैथिल थे। अब एक नजर महाकवि कालिदास विषयक ऐतिहासिक एवं शिलालेखीय प्रमाण पर डालते हैं।

सामान्यतया यह बहुमान्य है कि महाकवि गुप्त काल में उद्भूत थे और चंद्रगुप्त द्वितीय (375-414 ई.) के दरबार में थे। पुत्री प्रभावती के असमय विधवा होने पर दौहित्रद्वय दिवाकर सेन एवं दामोदर सेन तथा राज्य की देखरेख के लिए चंद्रगुप्त ने कालिदास को वाकाटक भेजा था। यह भी कहा जाता है कि वे समुद्रगुप्त (335-375 ई.) के सचिव थे तथा उनकी रचना कृष्ण चरित का परिष्कार भी कालिदास ने किया था। यह आश्चर्यजनक है कि प्रयाग प्रशस्ति में हरिषेण ने कहीं भी कालिदास या कृष्ण चरित का उल्लेख नहीं किया। दामोदर सेन जब प्रवरसेन द्वितीय (410-440 ई.) के रूप में राजा हुए तब उनके सेतुबंध काव्य का शोधन भी कालिदास द्वारा करने की बात आई है। इन सबों का ऐतिहासिक मूल्य अत्यल्प है। गुप्त काल के किसी भी अभिलेख-शिलालेख या मुद्रालेख में कालिदास का नाम नहीं आया है। यहाँ तक कि कालिदास ने भी किसी गुप्त सम्राट् का नामोल्लेख नहीं किया है। डॉ. एकान्त बिहारी ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के 18 अक्टूबर 1966 के अंक में प्रकाशित अपने आलेख में उज्जैन से कुछ दूर भैरवगढ़ में शिप्रा नदी के किनारे से प्राप्त दो शिलालेख की चर्चा करते हुए कहा है कि यह शिलालेख विक्रमादित्य के कहने पर उच्च पदाधिकारी हरि स्वामी के आदेश से तैयार हुआ था। इसमें 95 वर्ष की आयु में कार्त्तिक शुक्ल एकादशी रविवार को महाकवि की मृत्यु होने की बात अंकित है। आगे वे कहते हैं कि महाकवि का जन्म ईसापूर्व 56 ई. मानना उचित है। यह आश्चर्यजनक है कि इतने महत्त्वपूर्ण शिलालेख का समुचित प्रकाशन नहीं हुआ। यह तथ्यात्मक है कि मौर्य सम्राट् वृहद्रथ को सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने ईसापूर्व 185 ई. में सैन्य निरीक्षण करते समय वध कर दिया और शुंग राजवंश की स्थापना की। 36 वर्ष उनका और 8 वर्ष उनके पुत्र अग्निमित्र का शासन काल रहा। यही अग्निमित्र महाकवि के मालविकाग्निमित्रम् का नायक है। अर्थात् ईसापूर्व 185 - (36+8) = 141 ई. में दोनों का शासन समाप्त हो गया। ईसापूर्व 56 ई. में महाकवि का जन्म मानें तो अग्निमित्र के शासन अवसान के 141-56 = 85 वर्ष बाद महाकवि इस धरती पर अवतरित हुए। इस आधार पर वे पतंजलि के समकालीन

हो जाते हैं क्योंकि महाभाष्य में पतंजलि कहते हैं– इह पुष्यमित्रं याजयामः। यह संभव नहीं है। यदि दोनों समकालीन रहते तो दो अश्वमेध यज्ञों में उनकी चर्चा अवश्य होती। ऐसी चर्चा नहीं है। इसी प्रकार डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित अपने ग्रंथ 'कालिदास का वागर्थ' (पृष्ठ 69) में उज्जैन के गढ़कालिका क्षेत्र से 1976ई. में श्रीनारायण भाटी को एक मुद् मुद्रा मिलने, इस पर मकारयुक्त स्वास्तिक चिह्न और ब्राह्मी लिपि में 'कतस उजेनीय' अंकित होने की बात डॉ. वि. श्री. वाकणकर के मराठी आलेख (तरुण भारत, दीपावली विशेषांक) के आधार पर करते हैं। इसके विक्रम विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व संग्रहालय में संरक्षित होने का उल्लेख करते हुए राजपुरोहित ने इसे 'कृतस्य उज्जयिन्याः' कहा है। यह हर्ष का विषय है कि ब्राह्मी लिपि देखकर इसे प्रथम शताब्दी का ही माना गया सम्राट् अशोक के काल का नहीं। यथार्थ में इन अभिलेखों को संदेहरहित नहीं माना गया। रघुवंशम् (4/67-68) में हूण और पूर्वमेघ (पद 14) में दिग्नाग के उल्लेख का निष्कर्ष है कि महाकवि को ईसापूर्व पहली-दूसरी शताब्दी में नहीं रखा जा सकता। ईसापूर्व में हूण का उल्लेख या दिग्नाग की अवस्थिति भारतीय वाङ्मय में कहीं वर्णित नहीं है।

मालविकाग्निमित्रम् में अग्निमित्र (शासन अंत ईसापूर्व 141 ई.) नायक है। स्पष्ट है कि कालिदास का समय इससे पूर्व कदापि नहीं हो सकता। इसी प्रकार किसी ऐतिहासिक शिलालेख में महाकवि कालिदास का प्रथम उल्लेख पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल अभिलेख में हुआ है जिसमें प्रशस्तिकार रविकीर्त्ति ने स्वयं को कालिदास और भारवि के समान कीर्त्तिवान् कहा है–

येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्त्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्त्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्त्तिः॥ 37 ॥

प्रशस्ति के पद संख्या 33-34 से इस शिलालेख का समय शकाब्द 556 अर्थात् 634 ई. निर्धारित होता है–

त्रिशंत्सु त्रिसहस्त्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु॥33॥

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥34॥

स्पष्ट है कि महाकवि कालिदास का समय 634 ई. के बाद निर्धारित नहीं किया जा सकता। वैसे करने के लिए तो राजा भोज (999-1054 ई.) के साथ भी कालिदास का संबंध जोड़ा जाता है। इस विषयक अनेक दंतकथाएँ और जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। विभिन्न विद्वानों ने महाकवि कालिदास को ईसापूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर 11 वीं शताब्दी तक का समय दिया है। इनकी अवस्थिति गुप्त काल में होने की बात अधिक प्रशस्त है किंतु मुझे कतिपय कारणों से महाकवि का समय उत्तर गुप्त काल अधिक समीचीन लगता है।

स्कंदगुप्त के ओझल होने के बाद गुप्त सत्ता चरमराने लगी थी। स्कंदगुप्त के हाथों 455 ई. में निर्णायक पराजय के बाद हूणों ने पश्चिमोत्तर प्रांत में शरण लिया और अपनी शक्ति बढ़ाने में लग गए। गुप्त नरेश बुधगुप्त (477-515 ई.) और नरसिंहगुप्त बालादित्य एवं हूण सत्ता में जय-पराजय का चक्र चल रहा था। नरसिंहगुप्त बालादित्य ने हूण शासक तोरमाण से मिली पराजय का प्रतिशोध उसके पुत्र मिहिरकुल से लिया। बुधगुप्त की माता के हस्तक्षेप से उसकी जान बची और वह कश्मीर भाग गया। मालवा का शासक यशोधर्मन हूणों के विरुद्ध सशक्त प्रतिरोध बनकर उभर रहा था। उल्का की तरह उभरकर उसने अपनी तलवार की धार से लगभग पूरे भारतवर्ष को आयत्त कर लिया। पं. जयशंकर त्रिपाठी (रघुवंश महाकाव्य की रचना का देश-काल, महाकवि कालिदास और उनका युग, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 61-71) ने इसी हूणहंता और प्रतापी यशोधर्मन को महाकवि कालिदास का समकालीन कहा है। इनका आकलन है कि 503-518 ई. के मध्य महाकवि ने काव्य रचा। महाकवि की रचना प्रक्रिया, मिथिला और माटरा प्रक्षेत्र में प्रचलित अनुश्रुतियाँ, दोनों देशों के इतिहास और परंपरा के अवलोकन तथा देश-काल-परिस्थिति के अनुशीलन से मुझे भी महाकवि का समय छठी शताब्दी ही तर्कसंगत और सही लगता है। आगे यह और स्पष्ट हो सकेगा।

यशोधर्मन के पिता प्रकाशधर्मन के मंदसौर के रिष्ठलपुर पाषाण फलक से स्पष्ट होता हे कि उन्होंने 515 ई. के पूर्व तोरमाण को पराजित कर अधिराज की पदवी प्राप्त की थी। संभव है इस युद्ध में यशोधर्मन ने युवराज रूप में अपनी तलवार की धार से महाकवि को प्रभावित किया हो। महाकवि ने इसमें भारतवर्ष का वह भविष्य देखा हो जिसकी प्रतिध्वनि 528 ई. में मंदसौर के युद्ध में मिहिरकुल की निर्णायक पराजय में सुनाई पड़ती है। सोंधनी स्तंभ, मंदसौर प्रशस्ति और मंदसौर स्तंभलेख यशोधर्मन के विषय में विपुल जानकारी देता है। मंदसौर प्रशस्ति में

उल्लेख है कि यशोधर्मन की चरण वंदना संपूर्ण संसार ने की। उन्होंने पूरब लौहित्य (असम की ब्रह्मपुत्र नदी) से पश्चिम समुद्र तक और हिमालय से महेंद्र पर्वत तक का क्षेत्र जीता। जिनका मस्तक स्थाणु (शिव) के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं झुका उस यशोधर्मन के चरण-कमल पर हूण नरेश मिहिरकुल ने अपना मस्तक टेका। पस्त मिहिरकुल ने अपने मस्तक पर शोभित पुष्प यशोधर्मन के चरण युगल पर अर्पित किया–

आ लौहित्यौपकण्ठात्तलवन-गह[नो] पत्यकादामहेन्द्रा-
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्तुहिनशिखरिण:पश्चिमादापयोधे:।
सामन्तैर्यस्य बाहु-द्रविण-हृत-म[दै]: पादयोरानमद्भि-
श्चूडा-रत्नाङ्शु-राजि-व्यतिकर-शबला भूमि-भागा: क्रियन्ते॥15॥

स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति-कृपणतां प्रापितं नोत्तमाङ्गं
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरिर्दुर्ग्ग- शब्दाभिमान[म्]।
नीचैस्तेनापि यस्य प्रणति-भुजबलावर्ज्जन-क्लिष्ट-मूर्द्धा
[चू]डा-पुष्पोहारैर्म्मिहिरकुल-नृपेणार्च्चित[ं]पाद-युग्मम्॥16॥

(डॉ. वासुदेव उपाध्याय : गुप्त अभिलेख, ISBN 978-93-83021-30-7, पृष्ठ 225)

इसी में आगे उल्लेख है कि यशोधर्मन की सत्ता उन क्षेत्रों पर भी थी जिसका भोग गुप्त नरेशों ने भी नहीं किया था और न जहाँ हूणों की आज्ञा का ही प्रवेश हुआ था। मंदसौर स्तम्भ लेख के तीसरे पद में यशोधर्मन को मनु, भरत, मांधाता और अलर्क के समान कहा गया है– सम्राडिति मनु-भरताल्लर्क[मान्धा]तृ... ॥ 3 ॥ उज्जैन मंदसौर क्षेत्र (मालवा क्षेत्र) के ही अंतर्गत है और यहाँ के शासक यशोधर्मन को चक्रवर्ती सम्राट् और विक्रमादित्य भी माना गया है। जाट विद्वान् ठाकुर देशराज भाटी ने अपनी पुस्तक 'जाट इतिहास' (महाराजा सूरजमल स्मारक शिक्षा संस्थान, दिल्ली, 1934 का द्वितीय संस्करण, 1992, पृष्ठ 712) में ऐसा ही माना है। सम्राट् यशोधर्मन विक्रमादित्य के समय ही कालिदास ने श्रीलंका की यात्रा की थी।

यद्यपि महाकवि कालिदास की श्रीलंका यात्रा, वहाँ एक स्त्री द्वारा विष से कालिदास की हत्या, राजा कुमारदास द्वारा कालिदास की धधकती चिता में प्रवेश और फिर उनकी पाँच रानियों का अग्निप्रवेश को कुछ विद्वान् मिथक या अनैतिहासिक मानते हैं, फिर भी यह प्रसंग श्रीलंका के कण-कण में व्याप्त है। विशेषकर माटरा प्रक्षेत्र

का जन-जन इसे सत्य मानता है। कोरोना के कारण मेरा माटरा जाना संभव नहीं हुआ था, परंतु मैंने माटरा को अपने भतीजा चि. अभिनव की आँखों से देखा है।

चि. अभिनव डेलॉयट (Deliotte) कंपनी में सह निदेशक (Associate Director) हैं। 11 अगस्त 2022 को पत्नी चि. समीक्षा के साथ श्रीलंका की यात्रा पर गए थे। नुवारा एलिया (रेलवे स्टेशन का नाम नानु ओया) के सीताजी से जुड़े स्थलों का भ्रमण करने के बाद मिडीगामा के लिए Sheema Travells (मोबाइल सं. 94778942710) से वाहन सं. WP KM 6960 आरक्षित कराया। रास्ते में चालक से यूँही उसने माटरा के विषय में पूछा। चालक को माटरा के विषय में सब पता था। उसने विस्तार से कालिदास की हत्या, अपने राजा का चिता में प्रवेश फिर पाँच रानियों का अग्निप्रवेश, रोपे गए सात बोधिवृक्ष और समाधिस्थल पर भगवान् बुद्ध के स्थल निर्माण की कथा सुनाई। माटरा महाबोधिय ले जाकर दर्शन भी कराया। माटरा में अवस्थित कालिदास मार्ग (नीलवाला बाइपास के आर्या तिलक मवाथा मार्ग के सामने से निकलकर रहुला मार्ग में मिलनेवाली 0.48 कि. मी. सड़क) भी दिखाया। अभिनव ने दि. 13 अगस्त 2022 को अपने मोबाइल (+919818847057) से मुझे वीडियो कॉल पर पूरा परिसर दिखाया। भगवान् बुद्ध के साथ भगवान् विष्णु, महालक्ष्मी, कुमार कार्त्तिकेय, देवी सरस्वती, हनुमानजी आदि देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ और चित्र यहाँ सुशोभित हैं। असंख्य हाथियों के अग्रभाग की आकृति से निर्मित यह परिसर दिव्य प्रतीत होता है। खेद है कि जिन दो महाकवियों की समाधि स्थली यह है उन्हीं दोनों के चिह्न यहाँ नहीं हैं। किंतु, सत्य यही है कि यहाँ का बच्चा-बच्चा इस अभूतपूर्व घटना से भली-भाँति परिचित है तभी तो एक अल्प शिक्षित सामान्य चालक भी विस्तार से पूरी गाथा सुना जाता है। यह अलग बात है कि कुछ पढ़े-लिखे लोग भी आधुनिकता के फेर में पड़कर इस विरल घटना को मिथक ही मानते हैं। इसकी समीक्षा उचित है।

पंकज चटर्जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के Journal of the Department of Letters, vol XVI में आलेख The Poet Kalidas and Sea Voyage में सागर लंघन पर प्रतिबंध, सागर पार करने की दुर्गमता और महाकवि द्वारा इसका उल्लेख नहीं करने के कारण कालिदास के समुद्र पार करने को मिथक कहा। इसे तो बुद्धि की बलिहारी कहना ही उचित है। वृहत्कथा, अलंकारवती सहित अनेक लंबक ग्रंथों में सागर पार के स्नेह संबंधों की अनेक कथाएँ मिलती हैं। धार के राजा भोज विरचित युक्तिकल्पतरु में लघु नौका से विशाल पोत निर्माण, काष्ठ का चयन, पाल हेतु वस्त्र चयन, हिमशैल एवं चुंबकीय क्षेत्र से बचाव हेतु

लौहकील के उपयोग की मनाही जैसी सूक्ष्म बातों का उल्लेख बगैर समुद्र यात्रा के अनुभव के संभव ही नहीं है। भारत-श्रीलंका में समुद्री गमनागमन के असंख्य प्रमाण हैं। प्राचीन काल से ही दोनों देशों के बीच पारिवारिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, व्यापारिक- आर्थिक संबंध रहे हैं। Osmund Bopearachichi ने Francois Gros Felicitation volume के Ancient Sri Lanka and Tamil-nadu : Maritime Trade (South Indian Horizons, IFP, 2004, p 539-51) में केलानिय एवं इसके आस-पास पिलापितीय ग्राम में हुए उत्खनन से प्राप्त प्रागैतिहासिक काल के श्याम व लाल मृद्‌भांड पर बने प्रतीक जैसे बर्तन तमिलनाडु के कोडुमनाल में मिलने और तमिलनाडु के अरिकमेड निर्मित मनकों (Beads) का श्रीलंका के अनुराधापुर, केलानिय, रिदियागामा, तिस्समहारामा आदि स्थलों से मिलने एवं सिक्कों की प्राप्ति के आधार पर दोनों देशों का प्रागैतिहासिक काल से ही जारी आर्थिक संबंध को निरूपित किया है। वेद-पुराण-रामायण-महाभारत- वंशग्रंथ कालीन भारत-श्रीलंका संबंध की बात छोड़ भी दें तब भी सम्राट् अशोक की पुत्री संघमित्रा और पुत्र महेंद्र का श्रीलंका आगमन ऐतिहासिक स्त्रोतों से परिपुष्ट है। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में अंकित 'दैवपुत्र शाहिशाहानुशाहि शकमुरुण्डैः सैंहलकादिभिश्च' से भी स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त (325-375 ई.) का प्रभाव श्रीलंका पर था। उनके समकालीन सिंहलराज मेघवर्ण ने समुद्रगुप्त को दूत के माध्यम से उपहार भेजकर अपना मित्र बनाया। समुद्रगुप्त से आज्ञा लेकर बोधगया में मेघवर्ण ने भव्य बौद्ध मठ का निर्माण कराकर उसमें रत्नजड़ित भगवान् बुद्ध की प्रतिमा स्थापित करायी। इस मठ में श्रीलंका से आए यात्री रुकते थे (डॉ. वासुदेव उपाध्याय : गुप्त अभिलेख, ISBN 9789383021307, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2015, पृष्ठ 264-65)। पटना संग्रहालय में उपलब्ध कीर्त्ति अभिलेख से भी स्पष्ट है कि 500 ई. में सिंहल राज परिवार के एक सदस्य ने बोधगया के महाबोधि में अनेक मूर्त्तियों का निर्माण कराया। यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि अतीत में श्रीलंका पर भारत का और भारत पर श्रीलंका का आक्रमण होता रहा। छः तमिल शासकों- पांडु, परींदा, खुद्दा परींदा, त्रितारा, दाथिया और पीठ्य ने 432 ई. में मित्तसेना को रौंदकर अनुराधापुर को हथिया लिया और बारी-बारी से लंका पर 27 वर्ष राज्य किया। 459 ई. में धातुसेना (कुमार धातुसेना या कुमारदास के पितामह) ने देश के लिये अपने वैराग्य का त्याग कर दल संगठित किया और पीठ्य का वधकर अपना राज्य प्राप्त किया। चोल साम्राज्य का विस्तार अनुराधापुर तक हुआ था तो सुप्रसिद्ध सिंहल नरेश

पराक्रमबाहु प्रथम ने रामेश्वरम् तक अपना अधिकार जमा लिया था। कलिंगराज जयगोप और रानी पार्वती का पुत्र निशांकमल्ल (1187-96 ई.) एक प्रतापी राजा हुआ जो कलिंग और अनुराधापुर के लिए समान रूप से उत्तरदायी था। निशांकमल्ल ने एक मंदिर का उद्धार कर इसका नाम निशांकेश्वर रखा था (जी सी मेंडिस : Early History of Ceylon, ISBN 81-206-0209-9, पृष्ठ 65-66)। यह भी ध्यातव्य है कि श्रीलंका के भेल्सिटीथुराई (VVT) से भारत के कैलिमेयर बिंदु तक 1954 ई. में तैरकर पार करनेवाले प्रथम अभिलिखित मानव बनने का सौभाग्य मुरुगापिल्लइ नवरत्न स्वामी को मिला। इसके बाद से अनेक लोगों ने इस पॉक स्ट्रेट को तैरकर पार किया। तूतीकोरिन- कोलंबो फेरी सेवा 18 नवंबर 2011 से, तलाइमन्नार- धनुषकोडी फेरी सेवा 1964 ई. से और रामेश्वरम्-तलाइमन्नार फेरी सेवा 1984 ई. से बंद है। स्पष्ट है कि दोनों देशों के बीच गमनागमन सुगम था।

महाकवि कालिदास और कुमारदास के मध्य सामान्य तुलनात्मक अध्ययन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों एक ही गुरुकुल से दीक्षित हैं। कुमारदास का जानकीहरण कालिदास से प्रेरित है। जानकीहरण में मंदोदरी का करुण विलाप (19/32-52) कुमारसंभवम् के रति विलाप (4/3-38) से प्रभावित है। दोनों महाकवियों में भाव के साथ-साथ शब्दों का संचयन और शिल्प का सौंदर्य भी अनेक स्थलों पर समान है। इसे कुछ उदाहरणों से समझा जा सकता है–

> *जानकीहरण का* ***स्तनद्वस्योद्वहनश्रमेण...*** *(1/32) और रघुवंशम् का* ***आपीनभारोद्वहन...****(2/18),*
> *जानकीहरण का* ***अरालकेश्या अलके विधात्रा...*** *(1/33) और रघुवंशम् का* ***भित्वा निराक्रामदरालकेश्याः ...*** *(6/81),*
> *जानकीहरण का* ***मृगेन्द्रगामी मृगया बभूव...****(1/46) और रघुवंशम् का* ***ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी...****(2/30),*
> *जानकीहरण का* ***प्रभुः प्रजानामथ स प्रभाते...****(1/70) और रघुवंशम् का* ***अथ प्रजानामधिपः प्रभाते...*** *(2/1),*
> *जानकीहरण का* ***शरं शरण्योऽपि...****(1/74) का* ***साम्य रघुवंशम् के वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः*** *(2/30) से और*
> *जानकीहरण का* ***अथ राम वृषस्यन्ती...*** *(10/72) का साम्य रघुवंशम् के* ***इति रामो वृषस्यन्तीं...*** *(12/34)* से एकदम स्पष्ट है।

दोनों में समान भाव के अनेक श्लोक हैं। यह सत्य है कि चमत्कार उत्पन्न करने में कुमारदास का मन अधिक रमा है। जानकीहरण में एक अक्षर से निर्मित श्लोक (18/46) मुग्ध करता है–

ततातीति ततोतीता तातताताततत्ततौ।
ततो तोतितततैतेतौ ताते तुत्तितते ततिः॥

निरंतरानुप्रास का बेहतरीन उदाहरण इस पद का भाव है– स्वशक्ति से शिव स्वरूप को और सुदृढ़ करनेवाले हे शिवरूप हनुमान! विपुल विपक्षी की विस्तृत पंक्ति से होनेवाले भावी व्यथायुक्त संग्राम में यहाँ से वहाँ तक शत्रुदल का भक्षण करते हुए अपने लिए श्रद्धा का विस्तार करते हुए आइए। दो और तीन अक्षरों से तैयार श्लोक भी चमत्कृत करते हैं–

सारासिरूरुसुरूराः सारासारासु सूरसः।
ससार सारसारासः सुरासारिः ससार सः॥ (18/6)

(सुंदर जंघा और वक्षस्थल से सुशोभित मेघनाद, जो स्वर्ग का शत्रु है और जिसे बाणों की वर्षा करने में आनंद आता है, हाथ में विशाल तलवार लेकर हंस के समान गंभीर नाद करता हुआ आगे बढ़ा।)

यह सत्य है कि इस तरह के चमत्कार के कारण या कहें कि चित्र काव्य के प्रति मोह के कारण ही कुमारदास कालिदास नहीं बन सके। पर इसके साथ यह भी सत्य है कि कोमल भावों के सांद्र चित्रण में भी कुमारदास को अप्रतिम सफलता मिली है। जानकीहरण में निष्प्राण रावण के शरीर में बाण धँसने की जगह पर पड़े धूलकणों को मंदोदरी अपने काँपते हाथों से हटाने लगी कि इससे स्वामी की पीड़ा कम होगी–

प्रियस्य बाणव्रणरन्ध्ररोधिनं महीरजस्सञ्चयमश्रुवर्षिणी।
प्रिया परासोरपि खेदशङ्कया सकम्पहस्ता शनकैरपाहरत्॥
(19/36)

यह अद्‌भुत है और ऐसी मर्मस्पर्शी उच्चता का स्पर्श विरले कवि ही कर पाते हैं। यह भी एक तथ्य है कि कुमारदास वह प्रथम कवि हैं जिन्होंने जानकीहरण में पेंशन की बात की है–

नवे वयसि राज्यार्थं प्रविधाय जरां गतान्।
अक्षमेत्वेऽपितान् भृत्यान् कच्चित्पुष्णासि सादरम्॥ 6/40

इसी प्रकार युद्ध में मृत शत्रु की विधवा और बच्चों की रक्षा और प्रतिपाल करना विजयी राजा का कर्त्तव्य होने की बात कहकर कवि ने अपनी कल्याणी दृष्टि का परिचय दिया है–

त्वद्विक्रमेण वैधव्यं प्रापिता रिपुयोषितः।
बालत्राणार्थिनीः कच्चित् सम्यप्रक्षसि बन्धुवत्॥ 6/41

श्रीलंका के इतिहास और परंपरा में कालिदास-कुमारदास का प्रसंग आज भी जीवित है। अनेक विद्वानों ने इस प्रसंग को सत्य स्वीकार किया है मात्र पद में फर्क माना है।

कमलः कमलोत्पत्ति श्रुयते न तु दृश्यते।
बाले तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्॥

के स्थान पर प्रश्नोत्तर निम्न प्रकार दिया है–

वना तम्बारा माला नो तला रोनाता वाणी।
नला देदेरा पना गलवा गिया सेवाणी॥
सियात अम्बारा सिय तम्बारा सिय सेवेणी।
सिय सा पुरा निधि नो लवा नो सेवेणी॥

रिया डेविड्स कृत भावानुवाद है–

The forest bee got into the honey without hurting the flower but (being caught in the flower as it closed) he got away with his life to the cool shades of the jungle only when (in the morning) the lily unfolds its petal.

(Rhya Davids : Journal of the Deptt. of Letters, University of Calcutta, vol xvi, The Poet Kalidas and Sea Voyage, p1 ff)

यही भाव William Knighton (History of Ceylon, कोलंबो, 1845, p 106) का भी है–

सियातम्बेरा सियातम्बेरा सियासेवाणी।
सियास्पूरा निदिनोलावा अनसेवाणी॥
वणेवम्बारा मालानोताला रोणातावाणी।
महादेदारा पानागलावा गियासावाणी॥

किंचित् विचलन के साथ यह प्रसंग श्रीलंका के इतिहास में मान्य है।

असल समस्या कुमारदास कृत जानकीहरण की मद्रास पांडुलिपि के अंत में उद्धृत उन चार पदों (20/61,62,63,64) से उत्पन्न होती है जिसमें कवि के कथित पिता कुमारमणि, मान या माणित की युद्धभूमि में शहादत के दिन कवि का अंधे बालक रूप में जन्म, मामा मेघ और अग्रबोधि द्वारा लालन-पालन होने तथा महार्थ काव्य की रचना का उल्लेख है। ये श्लोक चतुष्टय कुमारदास की मेधा के अनुरूप नहीं हैं। जानकीहरण के लंदन पांडुलिपि में भी नहीं है। श्रीलंका के इतिहास से भी इसकी संगति नहीं बैठती है। कथित श्लोक चतुष्टय का अंतिम पद है–

आदायैनं दशायां स्थितमपितदह स्रस्तनाभ्या स्तनाभ्या
तुष्टे तस्मिन् गदानामरिहतपित्रिके पारयन्तौ रयन्तौ।
आत्मापत्याविशेषं युषतु रहतप्रेमदान्तौ मदान्तौ
यत्सानाथ्यात्स काव्यं व्यरचयदसुरद्विण्महार्थ महार्थम्॥

(20/63)

इसमें प्रयुक्त 'तदह स्रस्तनाभ्या' (जब उस कवि ने जन्म लिया) और 'स्तनाभ्या तुष्टे' (जब वो दुधपीबा शिशु थे) की शैली आत्मकथ्यात्मक नहीं है। यदि कवि ने स्वयं इसका प्रणयन किया होता तब शैली निश्चित रूप से आत्मवादी (मैं, मेरा, हमारा की शैली) रहती। पुराने कवियों में आत्म परिचय की परंपरा भी प्रायः नहीं ही थी। श्लोक चतुष्टय का काव्य-सौष्ठव भी कुमारदास के स्तर का नहीं लगता। निश्चित रूप से यह किसी प्रतिलिपिकार की रचना है। मैं श्लोक चतुष्टय को प्रक्षिप्त मानता हूँ।

यह सौभाग्य ही है कि श्रीलंका के इतिहास के सभी राजाओं के नाम और समय बिना किसी व्यतिक्रम के उपलब्ध हैं। जिज्ञासुजन A Chronological Table of Ceylon Kings, Ed. D M De Zilva Wickremsinghe & H W Codrington, Asian Education Service, New Delhi and Madras, 1994, vol 3, p 4-20 पर अवलोकन कर सकते हैं। इसका प्रथम प्रकाशन मि. हम्फ्रे मिलफोर्ड ने श्रीलंका सरकार के लिए ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, Amen House, E.C. लंदन से 1933 ई. में कराया था।

इसमें किसी कुमारमणि,मान या माणित का राजा रूप में वर्णन नहीं है। मान की स्थिति भी अजीब है। कश्शप द्वितीय (पशुल कसुबू) के पुत्र मानवम्मा (महला पानो) की चर्चा महावंश में नहीं है किंतु राजावलीय/पूजावलीय में इनका राजत्व काल 668-703 ई. दिया गया है। स्पष्ट है कि इस मानवम्मा को कुमारदास का पिता नहीं मान सकते क्योंकि नागिरीकांडा शिलालेख के अनुसार कुमारदास का समय छठी शताब्दी है।

श्रीलंका के उत्तर-केंद्रीय प्रांत के कदावत केरोल क्षेत्र में नागिरीकांडा में 7.5' × 2' की चट्टान पर ब्राह्मी-सिंहली के मध्य की लिपि में अंकित है कि कुमारदास ने क्रयकर ब्राह्मणगिरि के प्राचीन विहार को सरोवर और धनखेत का दान दिया ताकि भिक्षुओं की आवश्यकताओं की पूर्त्ति होती रहे। मूल पाठ इस प्रकार है–

1. सिद्धम्! महा-कुमारातसा-राजा-अपाया [हा बामनागा] रीय-वहेर अताया केनावि चदा कोतु

2. दिनाका महागारीय वेवा-सारा [से] कुगरिया वेवा-सारा [से] काबुबे वेवा-सारा [से] कताचनका-पुला सारा से

3. [वे]वा [से]मा चतारा वेवा-सारा दका-पेता कदाया बेजी-पेटा बामानागरीया-वहेरे बीका-सगहाता चरा

4. पचायता दिने सागा-वेगी-केरेयानी मा अतानो सिमे तवा-वेवा से नीलासा- वेवा से गजा- वेवा से पैदा वेवा से मा

5. वाटाका वेवा दका- [पे]ता से बेजा-पेता से बामानागरीया-वहेरे बीका सगहाता दे-पेता-करा-कड़ाका सगा-सरी

श्रीलंका के सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता एवं पुरातात्त्विक विशेषज्ञ डॉ. सेनार्थ पारानविताना ने श्रीलंका के इतिहास का एक गौरवग्रंथ *Epigraphia Zeylanica, Lithic*

and Other Inscriptions of Ceylon (*संपा. H W Codrington & S Paranavitana, Asian Educational Service, New Delhi and Madras, vol* 4, 1964 में संकलित अपने आलेख Nagirikanda Rock Inscription of Kumardas, पृष्ठ 115-28) में कुमारातसा को व्युत्पत्ति शास्त्र के अनुसार कुमारदास कहा है और इस कुमारदास को कुमार धातुसेना माना है।

श्रीलंका का गौरवग्रंथ राजावलीय में स्पष्ट उल्लेख है– ... His son Kumardas, a great scholar, reigned 18years. He lept into the flames of fire in which his friend Kalidas died, immolated himself therein,and went to the other world.

(राजावलीय : संपा. गुणशेखर, पृष्ठ 55)।

1265 ई. में रचित अन्य प्रतिष्ठित ग्रंथ पूजावली में इस घटना विषयक उल्लेख है–
ओहु कित कुमारदास महाकाण्डीया नवाहौरुद्दक राजा यय कता कालिदास नामतमा याहालुवा माला दो टेमे बाग्नि बड़ा हारालोवा गिया हा।
संपादक माबोपितीय मेघनकर ने इसका भाव दिया है–

उनके (मोग्गलान के) पुत्र सम्राट् कुमारदास महान् विद्वान् थे। नौ वर्ष राज्य करने के बाद जिस दिन इनके मित्र कालिदास की मृत्यु हुई उसी दिन कालिदास की चिता में स्वयं कूदकर अपने जीवन का त्याग किया।

(एम मेघनकर : पूजावली, कोलंबो, 1932, अध्याय 34, पृष्ठ 18)

पराक्रमबाहु चरित में भी इसका वर्णन है–

इजारा किवियारा पिनिन जानकीहरणी महाकवेन्दि।
कुमारदासा रदा कालिदास नाम किविन्दु हता सिय दिविपिदि॥

इसके भावानुवाद का उल्लेख *JRASB, vol lxii, part* 17, 1893, एच विद्याभूषण, Preface to Dharamrama's edition– Kumardas and his place in Sanskrit Litreature, G R Nadargikar , पृष्ठ 4 पर इस प्रकार है– The king Kumardas who with immortal poetic felicity composed the Jankiharan and other mahakavyas, sacrificed his life for the great poet Kalidas.

चूलवंश के यशस्वी संपादक विल्हेम गेगर ने भी इस घटना का उल्लेख किया है–

तस्साच्छाये कुमारादिधातुसेनोति विस्सुतो
अहु तस्सुतो राजा देवरूपो महाबलो
करिते पितुना कासी विहारे नवाकम्मकम्
करेत्वा धम्मासंगीतिम परीसोधेसी
संताप्पेसी महासंघम् पच्छायेही चतुहीपि
कत्वा पुंजेनि नेकनि नवमे हयने तिगा॥

(41/1-3)

चूलवंश (विल्हेम गेगर) का मेबेल रिकमर्स कृत जर्मन से अंग्रेजी अनुवाद, भाग 1, पृष्ठ 51 से भी स्पष्ट है कि अनेक महान् कार्य करते हुए कुमारादि धातुसेना नौवें वर्ष में परलोक चले गए। आगे गेगर महोदय ने चूलवंश में (भाग 2, पृष्ठ 218) कालिदास-कुमारदास के संग-संग महाप्रयाण की घटना को माटरा में ही घटित बताया। ए एम होकार्ट (Mortuary use of Bo trees, Ceylon Journal of Science, section G, vol 2, p 3) ने कालिदास-कुमारदास और पाँच रानियों की चिताभूमि पर सात बोधिवृक्ष लगाने की बात कही है जिनमे से अभी भी कुछ जीवित हैं। इस जगह का नाम माटरा महाबोधिय और हतबोधिय मटरा अपने आप सारी कहानी कह देता है। हत् का अर्थ सिंहल भाषा में सात (Seven) होता है।

यद्यपि पारानविताना महोदय, जिन्होंने कुमारदास का अस्तित्व प्रमाणित किया और नागिरीकांडा शिलालेख के आधार पर कुमार धातुसेना से उसकी अभिन्नता प्रमाणित की, बाद में आश्चर्यजनक ढंग से पलट गए। इनके अनुसार कुमारदास अग्रबोधि तृतीय के युवराज मान के पुत्र थे। इस मान को अग्रबोधि तृतीय (619-631 ई.) का भ्राता कश्शप द्वितीय (634-42 ई.) का पुत्र मानवम्मा (668- 703 ई.) का अनुज कहा गया। यह सरासर इतिहास विरुद्ध है। ऐसे में तो मानना पड़ेगा कि पुत्र कुमारादि धातुसेना के जन्म के प्राय: डेढ़ सौ वर्ष बाद पिता मान का जन्म होता है। वाह रे वाह! यह भी आश्चर्यजनक है कि इस कथित एक मान की हत्या तीन बार अलग-अलग ढंग से होती है। एक बार अंत:पुर की स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार करने पर मंत्रियों द्वारा और दूसरी बार अग्रबोधि के दूत द्वारा वेश्या के यहाँ। श्लोक चतुष्टय में तो उनकी तृतीय मृत्यु का वर्णन है। एक बार कुमारदास की मृत्यु पर मानवम्मा उनकी धधकती चिता में प्रवेश कर आत्मोत्सर्ग

करता है तो एक बार वह कुमारदास की चिता पर स्तूप बनाता है। हाय रे हाय! यथार्थ में सेनार्थ पारानविताना महोदय का नागिरीकांडा शिलालेख विषयक निष्कर्ष सत्य के धरातल पर आश्रित है जबकि बाद की उनकी अनैतिहासिक, काल्पनिक और भ्रामक निष्पत्ति उस विचार से प्रेरित है जिस आधार पर नेपाल के एक बड़े राजनेता नेपाल के चितवन के निकट मादी अयोध्या होने की बात करते हैं। जिस तरह वे इस अयोध्या के निकट सरयू नदी नहीं ला सके उसी तरह पारानविताना महोदय अपनी इस काल्पनिक स्थापना को सर्वग्राह्य नहीं बना सके। उनका नागिरीकांडा शिलालेख विषयक अध्ययन ही सर्वग्राह्य और सर्वमान्य है। जबकि कथित मादिल्ल शिलालेख, स्वर्ण पुरावंश और कुमारदास के श्लोक चतुष्टय के आधार पर बाद की उनकी अनैतिहासिक निष्पत्ति इतिहास विरुद्ध है।

महाकवि कालिदास की बिहार के बेनीपट्टी (मधुबनी) से श्रीलंका के माटरा तक की यात्रा को मात्र किंवदंती, अनुश्रुति या मिथक मानकर उपेक्षा करना उचित नहीं है। मिथिला में उच्चैठ भगवती की कृपा से बज्रमूर्ख कलुआ के महाकवि बनने की प्रचलित अनुश्रुति का प्राचीनतम अभिलिखित प्रमाण तिब्बती बौद्ध यात्री धर्मस्वामिन् (1197-1264 ई.) की जीवनी Biography of Dharmsvamin (Chag lo tsa ba Chos- rje-dpal), जीवनीकार- उपासक चोस-दार, अनुवादक- डॉ. जार्ज रोएरिक, विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, Institut of Oriental Studies, The Academy of Science, मास्को, सोवियत रूस, प्रकाशक– के पी जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना, 1959, पृष्ठ 82-85 पर उपलब्ध है। धर्मस्वामिन् 1234-36 ई. में नेपाल से उच्चैठ होकर मगध गए और लौटे थे। इसी प्रकार माटरा में दो महाकवियों के साथ-साथ महाप्रयाण की बात 1265 ई. के ग्रंथ पूजावली से समर्थित है। दोनों अनुश्रुतियाँ सत्य से संबलित हैं इसलिए अभी भी प्रचलित हैं। सायाश प्रसारित किंतु असत्य अनुश्रुतियाँ स्थायी नहीं होतीं और शीघ्र ही काल के गाल में विलीन हो जाती हैं।

कालिदास-कुमारदास विषयक यह मर्मन्तुद प्रसंग ऊपर वर्णित ग्रंथों के अतिरिक्त सिंहल ग्रंथ निकाय संग्रह और सद्धर्म रत्नाकर में भी उद्धृत है। यह एच जोसेफ एन्ड्रू फेरन्दा का कालिदास चरिताया (1887ई.), एफ. कूरे कृत कालिदास नृत्यपोता (साइमन दे सिल्वा सेने विरत्ना एवं मुहरन्द्रम द्वारा The Historical Tragedy entitled Kalidas रूपमे संपादित,1887) एवं शताधिक शोध-प्रबंधों से संबलित है। समकालीन विद्वान् जामिनी जी पुंछीहेवा (The Historic

Tales of Matara) सहित अनेक विद्वान् कालिदास-कुमारदास विषयक इस प्रसंग को सत्य मानते हैं। मैं भी इसे सत्य मानता हूँ। इस आधार पर महाकवि कालिदास का अंतिम समय 522 ई. माना जा सकता है। 70 वर्ष की आयु का अनुमान करें तब महाकवि कालिदास का समय 452-522 ई. माना जा सकता है। इससे यशोधर्मन विक्रमादित्य और कुमारदास या कुमार धातुसेना के साथ महाकवि कालिदास की संगति बैठ जाती है। सत्य यही है, आधुनिकता के फेर में भले इसे हम नजरअंदाज क्यों न करते रहें।

महाकवि कालिदास विषयक यह एक लघु विमर्श है। विस्तृत अध्ययन के लिए प्रस्तुत लेखक की मैथिली पुस्तक 'महाकविक महाप्रयाण' के पृष्ठ 23-200 तक उपलब्ध विमर्श का अवलोकन किया जा सकता है।

— डॉ. रंगनाथ दिवाकर

डॉ. रंगनाथ दिवाकर

बिहार सरकार के अतिरिक्त सचिव रूप में सेवा-निवृत्त डॉ. रंगनाथ दिवाकर मैथिली-हिंदी की अनेक पुस्तकों के यशस्वी लेखक, दक्ष संपादक और कुशल अनुवादक हैं। शोध में विशेष रूचि है। मिथिला के इतिहास-साहित्य-संस्कृति विषयक कतिपय प्रवादों-गुत्थियों को अपने अध्यवसाय और वैज्ञानिक दृष्टि के वैशिष्ट्य से सुलझा दिया है। अनेक पुरस्कारों-सम्मानों से अलंकृत डॉ. दिवाकर कन्दर्पीघाट में मिथिला विजय स्तम्भ का निर्माण के लिए अपर ग्रियर्सन रूप में समादृत हैं। महाकवि कालिदास और कंदर्पी से इन्हें विशेष मात्सर्य है।

संपर्क : 8709610336, rangnath.chy@gmail.com

— दीप नारायण

अनुप्रास

अनुप्रास प्रकाशन

मधुबनी, मिथिला (बिहार) 847 211

+91 94305 83847

anuprasprakashan@gmail.com

आवरण : अनुप्रास डिजाइन

प्रवास का प्रथम प्रहर

₹ 200

9 789391 371500

www.anuprasprakashan.com